ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १२ अंक २ आषाढ़ मास कलियुगाब्द ५१२१ जुलाई २०१९

मार्गदर्शक :
डॉ० शिवाजी सिंह
इरविन खन्ना
चेतराम गर्ग

सम्पादक :
डॉ. राकेश कुमार शर्मा

सह सम्पादक
डॉ. विवेक शर्मा

व्यवस्थापक
प्यार चन्द परमार

सम्पादन सहयोग :
डॉ० रमेश शर्मा
डॉ० ओम प्रकाश शर्मा

टंकण एवं सज्जा :
रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय :
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान,
नेरी, गांव व डाकघर - नेरी
जिला-हमीरपुर-१७७००१(हि०प्र०)
दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

मूल्यः
प्रति अंक - १५.०० रुपये
वार्षिक - ६०.०० रुपये
itihasdivakar@yahoo.com
chetramneri@gmail.com

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

संवीक्षण

प्राचीन चीन को भारतीय विज्ञान का अभिज्ञान — डॉ. धर्म चन्द चौबे — ५

हिमाचल के साञ्चा ग्रन्थों की लिपियां — डॉ. ओम प्रकाश शर्मा — १२

नेगी नतीराम (नोतीराम) की हारूल — प्रो. शिव भारद्वाज — १७

चम्बा लोकगाथा गायन में ऐंचली एवं मुसाधा में रामायण के ऐतिहासिक प्रसंग — चंचल सरोलवीं — २६

भारतीय ग्रहवेध परम्परा का इतिहास — विनोद कुमार शर्मा — ३०

शिवसंहिता व घेरण्डसंहिता में वर्णित हठयोग के आसन प्रकरण की तुलना — विकास नड्डा — ३४

पर्व विशेष

गुरु परम्परा एवं महर्षि वेदव्यास — डॉ. ओम दत सरोच — ३८

ध्येय पथ

गतिविधियां — प्यार चन्द परमार — ४१

सम्पादकीय

भारतीय इतिहास परम्परा

भारतीय इतिहास परम्परा लोक कल्याणकारी है। यह मानव और प्रकृति के सर्वपक्षों के अध्ययन और चिन्तन पर निहित है। ज्ञान का प्रचार–प्रसार सम्पूर्ण मानव समुदाय में हो, यह आदि काल से ही भारत में दिखाई देता है। भारत की विश्व को देन–मानवता का चिन्तन सर्वोपरि है, तो भी जब हम अन्य क्षेत्रों पर भी दृष्टि डालते हैं तो भारत के विज्ञान, गणित तथा खगोल विद्या का विशेष महत्त्व है। प्राचीन चीन को भारतीय विज्ञान का अभिज्ञान लेख इस ओर ही संकेत करता है।

इतिहास दिवाकर पत्रिका तथा इतिहास शोध संस्थान नेरी परिवार हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के महान सन्त, समाज सेवक, हिन्दू धर्म ध्वजवाहक स्वामी सत्यामित्रानन्द गिरि महाराज को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है जो कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (२५ जून, २०१६) को ब्रह्मलीन हो गए। स्वामी जी सामाजिक समरसता के वाहक तथा हिन्दू समाज में आई कमजोरियों को समाप्त करने हेतु दृढ़ संकल्पित थे। उन्होंने हरिद्वार में भारत माता मन्दिर का निर्माण किया जिसका संदेश भारत राष्ट्र की एकात्म शक्ति को जागृत करता है। उनके द्वारा विश्व हिन्दू परिषद्, गौरक्षा व गिरि कन्दराओं में रह रहे वनवासी बन्धुओं के लिए किए गए सेवा कार्य शताब्दियों तक स्मरण किए जाते रहेंगे।

भारत में मई, २०१६ में सम्पन्न हुए चुनाव का जब हम निपक्ष अवलोकन करते हैं तो समझ आता है कि भारतीय मतदाता ने अब जाति, सम्प्रदाय का त्यागकर सार्वभौमिक एकत्व, भारत माँ की अस्मिता को एक सशक्त नेतृत्व के हाथ में सौंपने का संकल्प दिखाया है। यह आम भारतीय की सूझ–बूझ का परिणाम है। विश्वास की इसी कड़ी में सर्वभौम की उन्नति है।

हिमाचल प्रदेश में द्वितीय भाषा के रूप में संस्कृत को मान्यता प्राप्त होना गौरव की बात है। अपने सार्थक प्रयासों के लिए संस्कृत भारती तथा हिमाचल सरकार को साधुवाद। इस अंक में प्राचीन साञ्चा ग्रन्थों में लिपियों और महान योद्धा नतीराम (नोतीराम) की हारूल गाथा (यशोगान) हमें विशेष प्रेरणा देती है।

*ऋषि परम्परा भारतीय समाज की एक उत्कृष्ट विरासत है। ऋषि ज्ञान के स्रष्टा है। उन्होंने उस ज्ञान को अनुभूत कर सूत्र व मन्त्र रूप में समाज को दिया है। शोध संस्थान नेरी कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (१०,११,१२ नवम्बर, २०१६) को **'पश्चिम हिमालय में ऋषि परम्परा'** विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित करने जा रहा है।*

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

संवीक्षण

प्राचीन चीन को भारतीय विज्ञान का अभिज्ञान

डॉ. धर्मचन्द चौबे

विश्व की दो महान सभ्यताएं हिमालय के इस पार और उस पार अनादिकाल से चली आ रही है जो हमें भौगोलिक तथा सांस्कृतिक समानता के अनेक पक्षों का दर्शन करवाती है। १९वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में मथुरा के एक डॉक्टर ब्रिटिश भारत की सेना के साथ चीन गये थे। उन्होंने बंदरगाह नगरों (Port towns) के घेरे से बाहर निकलकर दक्षिणी चीन के देहात और अन्य नगरों में भ्रमण किया था और वे आश्चर्यचकित रह गए कि हिमालय के दोनों ओर के निवासियों की सोच, रीति-रिवाज, पहनावा, वैज्ञानिक व्यवहार, भाषा, बोली, गीत, गणित, रसायनशास्त्र, चिकित्सा पद्धति, जड़ी बूटियों का ज्ञान, विवाह के रस्मों-रिवाज में कितनी समानता है। उन्होंने कहा कि हिमालय पर्वत अगर नहीं होता तो दोनों देश 'यूरेशिया' की तरह ही एक भौगोलिक और सांस्कृतिक इकाई होते।[१]

हिमालयी उपत्यका और रानीपूल नदी के पश्चिमी तट पर बसा गंगटोक उस ऐतिहासिक महामार्ग पर स्थित है जो तिब्बत के ल्हासा से ताम्रलिप्ति बन्दरगाह और वहां से दक्षिणी-पूर्वी एशिया के श्रीविजय साम्राज्य तक जाता था। गंगटोक से चीन को जोड़ने वाले दर्रे है – नाथुला और जलेपला। कभी इस मार्ग से भारतीय संस्कृति, धर्म और विज्ञान चीन देश में गये थे। विज्ञान के क्षेत्र में चीन को भारत की देन गणित, चिकित्सा और खगोलशास्त्र का वर्णन इस शोध पत्र में प्रस्तुत हैं।

पाँचवी सदी में संपादित चीन के सोंग वंश के इतिहास से जानकारी मिलती है कि भारत की तरह चीन भी २८ नक्षत्रों और नवग्रह की जानकारी रखता था। उनका भी सूर्य भारत की तरह १२ राशियों में परिभ्रमण करता था। बाद में टांग कालीन चीन में भारतीय खगोल की कई पुस्तकें गई और चीनी विद्वानों ने वर्तमान चीन में प्रचलित खगोलीय ज्ञान को विकसित किया। तीसरी शताब्दी के बाद भारत और चीन के मध्य वस्तुओं और विचारों का आदान-प्रदान तेजी से बढ़ा। टांग चीन में २१ भारतीय खगोल की पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। मातंगीसूत्र का भी चीनी में अनुवाद हुआ। **धर्मरुचि** नामक खगोलशास्त्री ने ३० खगोलशास्त्र के ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया। भारतीय खगोलशास्त्री **खरोष्ठ** की पुस्तक महासन्निपात सूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। यह वह समय है जब गुप्तकालीन भारत का विज्ञान दुनिया में फैल गया।[२]

टांग चीन में कैलेण्डर विज्ञान के तीन पीठ (Schools) कार्यरत थे। पहला काश्यपपीठ, दूसरा कुमारपीठ और तीसरा गौतमपीठ। गौतमपीठ ही टांग चीन का सरकारी कैलेण्डर बनाता था। चीन में मास को शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष में विभाजित किया गया था। सुंगवंश का इतिवृत कहता है कि चीन में कैलेण्डर सात ग्रहों पर आधारित था जो बाद में नवग्रह पर आधारित हुआ। चीन का

प्राचीन ग्रंथ ''गणित के नौ अध्याय'' कहता है कि जो भारतीय विद्वान चीन में आये वे गणित के उच्च कोटि के ज्ञाता थे।[३] सुई काल में भारतीय गणित के कई ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। टांग चीन में संख्याओं को राशि कहा जाता था। टांग वंश के समय नौ ग्रहों पर आधारित कैलेण्डर बना उसमें भारतीय पूर्ण संख्या के प्रयोग का उल्लेख किया गया है। खगोलशास्त्र के क्षेत्र में भारत प्राचीनकाल से ही ख्याति नाम है।[४] कई ग्रंथों का चीनी में अनुवाद किया गया है जैसे – मातंगीसूत्र, महासन्निपात सूत्र, महाप्रज्ञापारमिताशास्त्र और लोकस्थितिअभिधम्मशास्त्र। महाप्रज्ञापारामिताशास्त्र कहता है कि चन्द्रमा की गति से गणना करने पर एक माह २७ दिन का होगा किन्तु चन्द्रमा की गति को सूर्य की गति से जोड़कर गणना करने पर माह २९ दिन का होगा और पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य की गतियों का तुलनात्मक अध्ययन कर गणना करने पर माह ३० दिन का होगा।[५] चिन-केह-मू नामक भारतवेत्ता कहते हैं – इनके अलावा सैकड़ों भारतीय विज्ञान की पुस्तकों का चीनी में अनुवाद किया गया जो कालांतर में खो गईं।

चीन की किताबों से ही हमें जानकारी मिली कि १ से ९ तक की संख्या और शून्य का अविष्कार भारतीय विद्वानों ने किया। इसी काल में 'साइन' के साथ भारतीय त्रिकोणमिति चीन पहुँची। इसी प्रकार भारतीय गणित का चीन बहुत ऋणी है। आर्यभट्ट द्वारा रचित सायण की सारणी का ७१८ ई. में **काइयुआन झानजिंग** के रूप में अनुवाद हुआ।[६] बीज गणित और त्रिकोणमिति भारत से अरब और अरब से चीन पहुँचें। ७वीं शताब्दी का सुई वंश का इतिहास ग्रंथ 'सुई शू' कहता है कि **मो टेंग चिया-चिंग हुआंग** नामक मातंगीसूत्र का चीनी में अनुवाद किया गया जिसमें अन्तरिक्ष को मापने का सिद्धान्त दिया गया है।[७] **पो-लो-मेन-सुआन चिंग** एक भारतीय गणित का ग्रंथ था जिसका अनुवाद किया गया था। **पो-लो-मेन-सुआन** की एक अन्य भारतीय गणित की पुस्तक थी, जिसका चीनी में अनुवाद हुआ। **पो-लो-मेन-यिंग-यांग सुआन चिंग** – समय को मापने की विधि का भारतीय ग्रंथ था जिसका चीनी में अनुवाद हुआ। चीन के सुप्रसिद्ध ग्रंथ **गणित कला के नौ अध्याय** (Nine Chapters on Mathematical Art) में ९० डिग्री के त्रिकोण पर आधारित वंशभंगोद्देशकः सिद्धान्त मिलता है। जिसके अनुसार अगर एक बांस ६ फुट के ऊपर टूट कर गिर गया है और जड़ से उसकी दूरी ६ फीट है तो बांस की कुल लम्बाई कितनी है।[८] इसी ग्रंथ में चीनी में लिखा है जो भारत में एक श्लोक में मिलता है –

कमलं जलात्प्रदृश्यं विकसितमष्टाङ्गुलं निवातेन।
नीतं मज्जति हस्ते, शीघ्रं कमलाम्भसीवाच्ये।।

एक कमल जल के ऊपर ८ अंगुल का दिख रहा है। हवा ने उसे धकेलकर २४ अंगुल पर जल में डुबो दिया। आप कमल नाल की कुल लम्बाई बतायें।[९] इसी प्रकार भारत में जिस तरह वृत्त का व्यास मापा जाता था उसी प्रकार उस महान ग्रंथ में सूत्र दिया गया है –

व्यासार्धधनं भित्वा नवगुणितमयो गुडस्य घनगणितं ।

१०वीं शताब्दी की चीनी परम्परा और उनके वंश इतिवृत कहते हैं कि भारत से आये

बौद्धभिक्षु अद्‌भुत चिकित्सा शास्त्री थे। चीनी परम्परा कहती है ये विद्धान पंचविद्याओं यथा उच्चारणशास्त्र एवं व्याकरण, चिकित्सा तकनीकी, दर्शन तथा तर्कशास्त्र के महाज्ञानी थे। वेई वंश और सुई वंश के काल में सैकड़ों भारतीय चिकित्सा पद्धति की पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया गया जिनमें नागार्जुन, जीवक और ब्रह्मा द्वारा रचित पुस्तकों का उल्लेख आया है। एक अन्य ग्रंथ **महारत्नकूट सूत्र** की चीन में होने की जानकारी मिली जिसमें प्रसूति ज्ञान और मानव उपापचय की जानकारी मिलती है।[१०] चीन के वंश इतिहास के अध्यायों में स्त्रीरोग के निदान पर **काश्यपसूत्र**, बालरोग निदान पर **रावणसूत्र** और 'पाइल्स' के निदान पर ऋषि जीवक के सूत्र की जानकारी मिलती है। प्राचीन चीनी चिकित्सक **हुआ तो** भारतीय पद्धति से चीनी लोगों का उपचार करता था। चीनी पुस्तक Materia Medica भारतीय जड़ी बूटियों की सूची देता है। सुन-स्सुमाओं के निदानों में भारतीय औषधियाँ लिखी गई हैं। तीसरी शताब्दी से ६वीं शताब्दी तक चीन के राजवंशों के दरबारों में कई भारतीय चिकित्सक अपनी सेवायें दे रहे थे।[११] कई सम्राटों ने अपनी उम्र लम्बी करने के लिये एवं अपना यौवन बरकरार रखने के लिये भारतीय औषधियों का प्रयोग किया। सम्राट काओसुंग ने अपने दूत को भारत से योग्य चिकित्सकों को लाने भेजा था। दक्षिणी पश्चिमी चीन के सिनकियांग प्रान्त से प्राप्त खोतानी ग्रन्थ बताते हैं कि भारतीय आयुर्वेद और सुश्रुत संहिता की कई उपयोगी चिकित्सा पद्धतियां इस क्षेत्र में प्रयोग की जाती थीं। तिब्बत के माध्यम से भारतीय चिकित्सीय ज्ञान चीन के कुलीन वर्गों में फैला। प्रो. **जिन शियालिन** लिखते हैं कि चीन के सम्राट ताई सुंग ने अपने अधिकारियों को भारत भेजकर गन्ने से गुड़ और खांड बनाने की विधि प्राप्त की थी। फिर चीनी रसायनज्ञों ने खांड को रवादार सफेद चीनी में बदल दिया।[१२] आज भी शक्कर को हम चीनी कहते हैं। चीन केह मु नामक विद्वान कहते हैं कि चीन भारतीय विज्ञान का ऋणी है ।

१९वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद पश्चिमी विद्वानों ने यह भ्रम फैलाना प्रारम्भ किया कि पूर्वी सभ्यताओं में आधुनिक विज्ञान जैसी घटना कभी घटित ही नहीं हुई। अगर ऐसा था भी तो वह 'छद्‌म विज्ञान' (Pseudo-Science) था। उन्होंने अपने विश्वव्यापी लेखों में लिखा है कि इन पूर्वी सभ्यताओं में विज्ञान आधारित तकनीक का अभाव था। इस प्रकार १८५० ई. से १९५० ई. तक पश्चिमी विद्वानों ने यूरोपीय वैज्ञानिकों और औद्योगिक क्रान्ति के ऐसे गीत गाये कि भारत, अरब और चीन के लोग यह मान बैठे कि दुनिया की सारी ज्ञान-विज्ञान की बातें आधुनिक पश्चिम के उदय (१७६०-१८००ई.) के साथ ही उत्पन्न हुई हैं। पूर्वी सभ्यताओं (अरब-भारत-चीन) की सामाजिक संस्थाओं, शिक्षा-व्यवस्था और मूल्य परम्परा के बारे में भी इन्होंने लगातार नकारात्मक लेखन करके पढ़ने लिखने वाले लोगों के मन में भ्रांतियाँ पैदा कीं और यूरोप-अमेरिका केन्द्रित विश्व सभ्यता और संस्कृति के प्रति आस्था, विश्वास और प्रेम पैदा किया। १९५० ई. तक भारत का बुद्धिजीवी पश्चिमी ज्ञान -विज्ञान, विकास, तकनीक और उन्मुक्त-स्वच्छन्दता पर मुग्ध हो गया। यह बुद्धिजीवी भारत का विश्व सभ्यता में योगदान को भूल बैठा।

किन्तु सच्चाई छुप नहीं सकती। आज नहीं तो कल सत्य का सूर्य अन्धकार के बादलों से

निकलकर आता ही आता है। धर्मपाल नाम गांधीवादी विचारक ने १९६० के दशक में The Beautiful Tree एवं Indian Science and Technology in 18th Century नामक पुस्तक लिखकर कुछ हद तक अन्धेरा छाँटने का काम किया है। अंग्रेजों के आगमन के समय (१७५० ई.) में भारत में विज्ञान और तकनीक की क्या स्थिति थी – अंग्रेजी स्त्रोतों और अंग्रेज अधिकारियों के पत्रों के माध्यम से उजागर किया है। उन्होंने छः अध्याय तो भारतीय विज्ञान पर एवं ११ अध्याय भारत की उस तकनीक पर लिखे हैं जिसके दम पर भारत १८०० ई. तक दुनिया का सर्वाधिक धनी देश बना हुआ था। हमें ढूँढकर इन दोनों पुस्तकों का अवलोकन करना चाहिए।

अब हम भारत के बाहर भारतीय विज्ञान के प्रसार की बात पर आते हैं। १९५९ई. में चीनी इतिहासकार जिन-केह-मू ने A Short History of Sino-Indian Friendship नामक पुस्तक लिखी, जिसमें एक अध्याय है – भारतीय विज्ञान का चीन को अवदान। इसमें भारतवेत्ता ने खुले मन से स्वीकार किया है कि बौद्ध धर्म के आगमन के साथ ही भारत की वास्तुकला तकनीक, मूर्तिकला तकनीक, खगोलशास्त्र, गणितशास्त्र, चिकित्सा, रसायन और संगीत का स्वर शास्त्र भी चीन पहुँचा। इन सबने काफी हद तक चीनी सभ्यता और संस्कृति को प्रभावित किया। भारत से चीन जाने वाले बौद्ध ऋषि आयुर्विज्ञान के ध्वजवाहक थे। बौद्ध परम्परा में जीवक और नागार्जुन बड़े चिकित्सक थे।[१३] इनके चीन में आगमन के साथ ही भारतीय चिकित्सा पद्धति चीन में प्रचलित हुई। Ophthalmology, Obstetrics, Therapeutics, स्त्री रोग, शिशु रोग, मनोचिकित्सा, शारीरिक फिटनेस के विशेषज्ञ चीन में भारतीय लोग थे। बौद्ध ऋषि शल्य चिकित्सा में महारत प्राप्त थे। ये उनकी सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग था। अमोघवज्र की चीन में उतनी ही प्रतिष्ठा है जितनी कुमारजीव की थी।[१४] ११वीं शताब्दी के चीनी ''डायनेस्टिक एनल्स'' में कहा है कि अमोघवज्र चीन देश के राष्ट्रीय शिक्षक है जिन्होंने आँख की बीमारी दूर करने का ग्रंथ लिखा था। ''चक्षुरर्वियोधन विद्या'' नामक ग्रंथ में हर प्रकार की आँख की बीमारी दूर करने के उपाय और औषधि है। इन्होंने 'धारणी' नामक मंत्र की रचना की जो आँख की बीमारी को दूर करता था। जो आयुर्वेद के त्रिदोष सिद्धान्त पर आधारित है। चीन में नागार्जुन, जीवक और कायोपा को ''भैषजराज गुरू'' कहा गया है। नागार्जुन ने सुश्रुत संहिता को पुनर्संपादित किया था और इस ग्रंथ को चीनी भाषा में ज्ञानभद्र नामक विद्वान ने ६वीं शताब्दी में अनुवाद किया था।[१५] चीन के सुई वंश (५८१-६१८) के काल में भारतीय चिकित्सा शास्त्र की १०० पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। चीन के सुंग वंश के काल में नागार्जुन, जीवक और ब्रह्मा द्वारा लिखित चिकित्सीय पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। तांग वंश का दरबारी कवि लियू चू सि ने भारतीय नेत्र विशेषज्ञ की महिमा में कविता लिखी थी।[१६] मध्यएशिया के किसी शहर से आये शिगाओ नामक विद्वान जो संस्कृत और चीनी भाषाओं का प्रकांड पण्डित था, ने कई भारतीय चिकित्सा की पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया (१४७ ई.)। कायप नाम विद्वान ने धातृविद्या और मातृ सुश्रुषा के ग्रंथों की रचना की। काश्यप संहिता और वृद्धजीवक तंत्र नामक पुस्तकों की चर्चा चीन के वंश इतिहास में मिलती है। विद्वानों की मान्यता है कि ये सुश्रुत और चरक संहिता पर

आधारित चिकित्सीय ग्रंथ थे जो चीन देश में लोकप्रिय हुए। जीवक द्वारा 'औरतों की सामान्य बीमारियों' पर आधारित ग्रंथ चीन में **'नाई नू कि पो जिंग'** नाम से प्रसिद्ध था। काश्यप रचित गर्भवती महिलाओं की निषेध सूची को 'का ए जिन जिये जिंग' नाम से जाना गया। भारतीय त्रिदोष वात, पित्त और कफ के सिद्धान्त को चीनी जनमानस में लोकप्रिय किया गया जिसे क्रमशः फेंग, हुआंग और तान कहा गया है। एक भारतीय विद्वान बाओ सि वेई जिंग अथवा रत्नचिंता ने अवलोकितेश्वर चिन्तामणि धरणी का चीनी में अनुवाद किया, जो चिकित्सा और तंत्रमंत्र पर आधारित पुस्तक थी। इसमें भारतीय औषधियों और मसालों की चर्चा है। चीन के वंश इतिवृत (Dynastic Annals) में बार-बार बौद्ध विद्वानों द्वारा मोतियाबिन्द और आँख की अन्य बीमारियों को ठीक करते हुए दिखाया गया है।[१७] ७वीं शताब्दी में सम्पादित एवं संशोधित 'मटेरिया मेडिका' नामक ग्रंथ भारतीय भिक्षु द्वारा 'बेरी बेरी' (सुखैनी) रोग के इलाज की चर्चा करता है। ८वीं शताब्दी में रचित चीनी ग्रंथ Waitai Mjao Feny (Medical Secrets of an Official) जिसका लेखक 'पांगताओं' है में बेरी बेरी का इलाज भारतीय औषधि से होना बताता है। अंजता और एलोरा की तर्ज पर चीन की 'तुनहुआंग' गुफा का निर्माण सुई और तांग वंश के समय (६वीं-९वीं शताब्दी) में हुआ। इस गुफा की भित्ति चित्रों पर भारतीय भिक्षुओं द्वारा चीन के लोगों को रोगों से उपचार करते दिखाया गया है। वहाँ से १२वीं शताब्दी में 'किपोशू' नामक चिकित्सा ग्रंथ मिला जो चीनी और संस्कृत (ब्राह्मी लिपि) में प्राप्त हुआ। इसको बाद में चेंगमिंग नामक चीनी भेषज शास्त्री ने सम्पादित किया। इस ग्रंथ में तीन विशेष औषधीय फलों की चर्चा है। पहला 'हरीतिकी' दूसरा 'विभीतक' और तीसरा 'आमलकी' अर्थात् ये त्रिफला हैं। अन्य तीन फलों में सनसिन-पीपली, मरीच और ऊंधी जिन्हें त्रिकटू कहा गया है। पूर्व मध्यकालीन चीनी औषधि विशारदों ताओ होंगजिंग (४५६-५३६ ई.) और सुन सियामाओ (५८१-६८२) ने भारतीय औषधियों की लम्बी सूची अपने ग्रंथों में दी है। सुन सियामाओ ने औषधी के साथ-साथ करूणा, दया और सहानुभूति को वैद्य द्वारा काम में लेने को कहा गया है। चीन के इस महान चिकित्सक ने ध्यान (चान) और योग को मनोरोगियों के उपचार में प्रयोग किया।[१८] इसको इसने 'आन मो फा' कहा है। पीलिया को संस्कृत में 'कामला' कहते है – इस चिकित्सक की पुस्तक में Jaundice को 'का मो लो' कहा गया है। सुन सिमियाओं अपने ग्रंथ 'बेजि कियानजिन याओ फांगू' (प्रमुख औषधीय सूत्र) में कहता है कि भारत के आचार्य जीवक कहते हैं कि पृथ्वी की हर वस्तु का अपना प्रभाव और द्रव्यमान है। चरक संहिता भी ऐसी ही बात करता है। बच्चों और स्त्रियों की बीमारी में सुन सियामाओं चरक संहिता की नकल करता दिख रहा है।[१९]

फिर अगर भारतीय चिकित्सा चीन गई तो रसायन भी गया होगा। जोसेफ निधम ने साफ कहा है कि चीनी और भारतीय रसायनज्ञों में करीबी समन्वय था।[२०] जोसेफ निधम लिखते है कि चीन के संभ्रांत और राजपरिवार के लोग अपनी उम्र को बढ़ाना चाह रहे थे। भारतीय रसायन का निर्माण मनुष्य को दीर्घायु बनाने के लिए हुआ था। भारतीय पुस्तकों रसरत्न समुच्चय, सिद्धयोग व रसार्णव तंत्र इत्यादि की चर्चा चीन के प्राचीन ग्रंथों में है। भारतीय प्राण और चित्त के लिए चीन में 'चि' शब्द

है।

इसी क्रम में तानसेन लिखते है कि जीवन को लम्बा करने वाले रसायन भारत से चीन पहुँचे[२१]। चीन का कुलीन वर्ग, दरबारी और राजपरिवार के लोग अमृततत्व की प्राप्ति चाहते थे। चीन में जो भिक्षु निवास करते थे उनकी दीर्घायु और जीवन मुक्ति तथा चेहरे की कान्ति चीनियों के लिए सिद्धि के विषय बन गए। वे उन सिद्ध भारतीयों की तरह लम्बी उम्र, तीक्ष्ण बुद्धि एवं स्मृति, रोगमुक्त, कांतिवान आनन, बलिष्ठ एवं सुदर्शन होने के लिए भारतीय रसायन प्राप्त करना चाहते थे। वे धातुओं (स्वर्ण-पारद) और फलों के रस युक्त (उत्स) रसायन प्राप्त करना चाहते थे।[२३] यह रसायन बौद्ध धर्म के चीन पहुँचने से पूर्व ही पहुँच चुका था। हान नरेश वु ने इस रसायन को प्राप्त करने का पहला प्रयास किया था। तीसरी शताब्दी का चेन शाऊ नामक चीनी विद्वान हुआ वह तुओ नामक चिकित्सक की चर्चा करता है जो चीन के जियांग्सु शांडोंग क्षेत्र में लोगों को भारतीय आयुर्वेद की औषधियाँ देता था।[२४] तानसेन और जोसेफ निधम मानते है कि चीनी रसायन (Alchemy) ने भी भारतीयों को प्रभावित किया होगा क्योंकि चीन की कई वस्तुएं यथा सिल्क, चमड़ा, आडू व कपूर इत्यादि भारत के बाजारों में उपलब्ध थे। भारतीय रसायनज्ञों और विद्वानों की चीन में बड़ी प्रतिष्ठा थी। एक बार तांग नरेश शुवानजोंग ने सभी विदेशी भिक्षुओं को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। वज्रबोधि नामक भारतीय भिक्षु ने कहा कि मैं भारतीय भिक्षु हूँ और चिकित्सक भी हूँ। राजा का आदेश मेरे पर लागू नहीं होता और उन्हें चीन में रहने दिया गया।[२५]

सन्दर्भ :

1. गर्ग, महेन्दुलाल, चीन दर्पण, लखनऊ, १९०३, पृ. ३३
2. Mu, Chin Keh, A Short History of Sino Indian Friendship, Peking, 1959, P. 18 ; Mukhopadhyaya, S.K. : The Saradulakaravaadna Sutra, Santiniketan, 1954, Pp-46-53
3. Mu, Chin Keh, A Short History of Sino- Indian Friendship, Peking, 1959, P.19; Chin Keh-mu, : India and China : Scientific Exchanges, D. Chathopadhyaya (ed) : Studies in History of Science in India, Vol. -II, 1982, PP 776-790.
4. Mu, Chin Keh, A Short History of Sino Indian Friendship, Peking, 1959, P. 20 ; Gupta, R.C. : Indian Astronomy in China During Ancient Times, Vishveshwaranand Indological Journal, XIX, PP 266-267, P. 270, 1981
5. Mu, Chin Keh, A Short History of Sino Indian Friendship, Peking, 1959, P. 21
6. Needham, Joseph, History of Science and Civilization in China, 1954,Cambridge University Press, Vol. 3, P. 109
7. Gupta, R.C., Indian Atronomy in China during Ancient Times, Vishveshvaranand Indological Journal XIX, 266-276, 1981, P. 270 ; Yabuuti, K : Indian and Arabian Astronony in China, Kyoto, 1954, Pp 583-585
8. Gupta, R.C.; Indian Atronomy in China during Ancient Times, Vishveshvaranand Indological Journal XIX, 266-276, 1981, P. 271
9. Warden, B.L. ; van dar: Geometry and Algebra in Ancient Civilization. Pringer-Verlag, Belin, Pp. 50-51, (1983); Mikami, Y , The Development of Mathmatics in China and Japan, Chelsea, New York, P. 14 (1961)

10. Warden, B.L. ; van dar: Geometry and Algebra in Ancient Civilization, Pringer - Verlag, Berlin, P. 53 (1983) , Shukla, K.S. (ed). Aryabhatiya with Commentary of Bhaskar I and Someshwar INSA, New Delhi, PP 99-100 (1976).
11. Chin Keh Mu, P. 22
12. Chin Keh Mu, P. 23
13. Kieschnick, John ; The Impact of Buddhism on Chinese Material Culture, Princeton University Press, 2003. P. 141
14. उनके जीवन वृत्त बताते हैं कि चीन वही भिक्षु जाता था जो पंचविद्याओं में पारंगत था और इन पंचविद्याओं में चिकित्साशास्त्र एवं गणितशास्त्र प्रमुख थे।

    Mukherji, P.K. ; Indian Literature in China and the Far East, Prabasi Press, Calcutta, 1931, P. 139
15. Deshpande, Vijay Jayant ; Glimpses of Ayurveda in Chinese Medicine, Indian Journal of History of Science, 43.2 (2008) 137-161, P. 140
16. वही पृ. १४१, Tewari, P.V.J. Kattyapa - Samhita (वृ)thodh;era= वा), Text with English translation and commentary (Haridas Aryuveda Series) Chaukh ambha Vishwabharti, Varanasi , 1996
17. Ji Xialin ; Indian Ophthalmology in Ancient China, Researches in National Studies, Vol. 2, 1994 Peking, P. 555
18. वही पृ. ५५६ - Levi, Howard S ; Translations from Po Chu-I's Collected Works, New York, 1971, Vol. 2, P. 58.
19. Deshpandey, Vijay Jayanat, P. 147
20. Deshpandey, Vijay Jayanat, P. 148
21. Needham, Joseph ; Science and Civilization in China, Vol. 5, Chemistry and Chemical Technology, Part 5, Spagyrical Discovery and Innovations : Physiological Alchemy, Cambridge Univerity Press, 1983, Pp 279-278
22. Sen, Tansen, Buddhism, Diplomacy and Trade : The Re-alignment of Sino-Indian Relations, 600-1400 AD-, University of Hawaii Press, 2003, P. 50
23. Sen, Tansen, Buddhism, Diplomacy and Trade : The Re-alignment of Sino-Indian Relations, 600-1400 AD-, University of Hawaii Press, 2003, P. 51
24. Sen, Tansen, Buddhism, Diplomacy and Trade : The Re-alignment of Sino-Indian Relations, 600-1400 AD-, University of Hawaii Press, 2003, P. 52
25. Sen, Tansen, Buddhism, Diplomacy and Trade : The Re-alignment of Sino-Indian Relations, 600-1400AD-, University of Hawaii Press, 2003, Pp. 53-54

सह आचार्य -इतिहास,
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय
अलवर - राजस्थान

हिमाचल के साञ्चा ग्रन्थों की लिपियां

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

हिमाचल के शिमला, सिरमौर तथा सोलन जिलों व उत्तराखण्ड के जौंसार-बावर आदि जनपदीय गांव में असंख्य साञ्चा पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। ये साञ्चा ग्रन्थ पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपियों में निबद्ध हैं। इन लिपियों पर प्रकाश डालने से पूर्व यहां इन साञ्चों में निबद्ध विषयवस्तु को रेखांकित करना अपेक्षित है। वस्तुतः वैदिक वाङ्मय की विषयवस्तु ही सूत्र रूप में इन साञ्चा ग्रन्थों में विद्यमान है।

वेद, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् और वेदाङ्ग वैदिक वाङ्मय के आधारभूत प्रकाश स्तम्भ हैं। सम्पूर्ण वैदिक ज्ञान अथवा वैदिक मन्त्रों में निहित ज्ञान परवर्ती स्मृति ग्रन्थों, रामायण, महाभारत, दर्शन ग्रन्थों और पुराणों में भी निबद्ध हुआ। यही ज्ञान आदिकाल से समाज के जीवन दर्शन का निर्माण करता आया है। ज्ञान के ये आधारभूत गन्थ प्राच्यविद्या के रूप में विश्व-समुदाय के समक्ष आए। वैदिक ज्ञान या मन्त्र तीन भागों में विभाजित है, जिन्हें त्रिकाण्ड कहते हैं। ये त्रिकाण्ड – ज्ञान काण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड रूप में प्रसिद्ध हैं। ज्ञानकाण्ड में सृष्टि, स्थिति और लय के दार्शनिक सिद्धान्त निबद्ध हैं। वेदाङ्ग ज्योतिष त्रिकाल ज्ञान का कालगणना के सिद्धान्तों के अनुरुप विवरण प्रस्तुत करता है। कर्मकाण्ड में आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इन त्रितापों से उपजे दुःखों के निवारण के सिद्धान्त निहित हैं। षोडष संस्कार के कर्म इसके प्रबल प्रमाण हैं। उपासना काण्ड में जीवन दर्शन के दार्शनिक सूत्रों के साथ-साथ तन्त्र, मन्त्र और यन्त्र के सिद्धान्त निबद्ध हैं। प्राच्यविद्या के रूप में विख्यात उपर्युक्त भारतीय शास्त्र अथवा विद्याएं सत्यं, शिवं और सुन्दरम् पक्षों को समेटे हुए हैं। ये पक्ष जन कल्याण की बात कहते हैं।

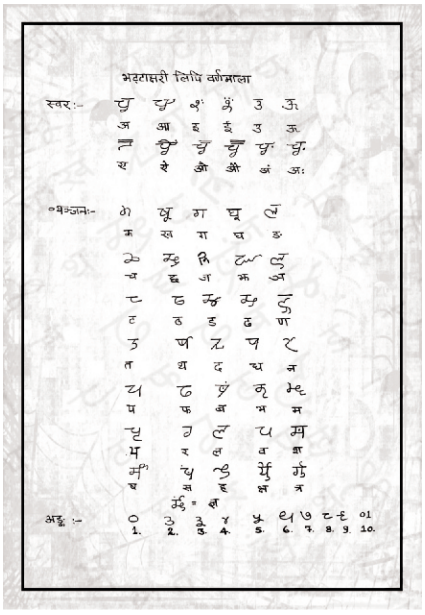

भट्टाक्षरी लिपि

भारत के इन महान ग्रन्थों में निहित ज्ञान को गांव-गांव में बसने वाले विद्या के जानकार विद्वानों ने कालक्रम से लिपिबद्ध करने का कार्य किया है, जो पाण्डुलिपियों के रूप में सर्वत्र दिखाई

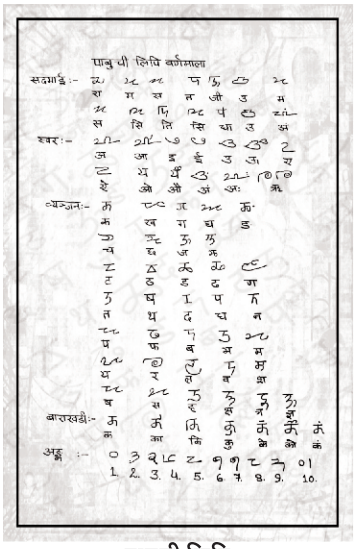

पाबुची लिपि

देता है। इसी कड़ी में हिमाचल के शिमला, सिरमौर, सोलन एवं उत्तराखण्ड के जौंसार-बावर जनपदों के कुछ गांवों में ज्ञानकाण्ड, कर्मकाण्ड और उपासना काण्ड एवं अन्य ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां उपलब्ध हैं। ये पाण्डुलिपियां 'साञ्चा ग्रन्थ' के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन साञ्चा पाण्डुलिपियों में वैदिक ज्ञान या मन्त्र जो त्रिकाण्ड रूप में विभाजित है तथा इन त्रितापों के निवारण के सिद्धान्तों की बात कहते हैं, सूत्र रूप में निबद्ध है। ये पाण्डुलिपियां अथवा साञ्चे शारदालिपि से उद्भूत पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) इन चार लिपियों में निबद्ध हैं। वर्तमान में कुछ साञ्चे देवनागरी लिपि में भी परिवर्तित किए जा रहे हैं।

पाबुची, भट्टाक्षरी, पाण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपियां इन क्षेत्रों में कैसे आई, यह भी एक रोचक विषय है। हिमाचल के शिमला, सिरमौर और सोलन जनपदों के गांवों में पाबुचों, पाण्डों, भाटों और चन्दाणों के वंशज कालक्रम से स्थापित हुए। राजतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में राजाओं ने इन विद्वान ब्राह्मणों को संरक्षण दिया ताकि विद्याओं में निहित ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाया जा सके। कालक्रम से इन वंशों ने इस प्राच्य विद्या के ज्ञान को साञ्चों में लिपिबद्ध किया। इन वंशों के विद्वान ब्राह्मण गुरुकुल पद्धति से ज्ञान अर्जित करने के लिए कश्मीर या बनारस जाया करते थे। कश्मीर प्राचीन काल में प्राच्यविद्या का महान केन्द्र रहा है। वैदिक ज्ञान अर्जित कर ये ब्राह्मण अपने साथ लिपि ज्ञान को भी साथ लाए। कश्मीर में ६वीं-१०वीं शताब्दी में शारदा लिपि का प्रचलन प्रारम्भ हो गया था। पाबुचों, भाटों, पाण्डों और चन्दाणों के वंशजों ने वेदमन्त्रों के ज्ञान को शारदा मिश्रित वर्णों में निबद्ध किया। लिपिबद्ध करते-करते कालक्रम से वर्णों और अक्षरों में परिवर्तन भी स्वाभाविक था। परवर्ती काल में शारदा से निकले वर्ण, अक्षर, मात्राएं, अङ्क एवं वाक्य इन वंशजों के गुरुकुलों में परिवर्तित होकर समक्ष आने लगे। यही परिवर्तन पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपियों के रूप में समक्ष आया।

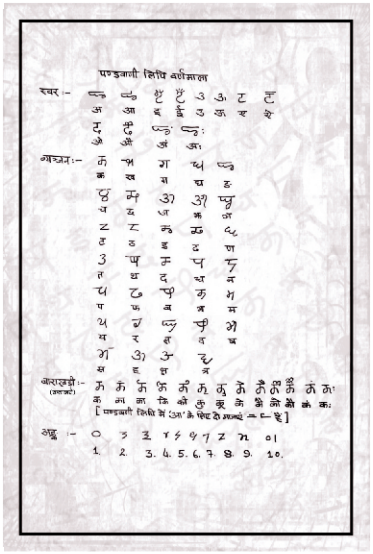

पण्डवाणी लिपि

इन चारों लिपियों के जानकार वंशजों की स्थापनाओं का संक्षिप्त दिग्दर्शन करना भी यहां प्रासंगिक है। पाबुचों की वंशावली से पता चलता है कि इस वंश के

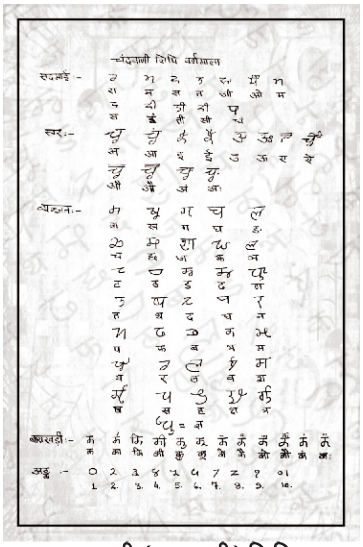

चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपि

पूर्वज पूर्व में कश्मीर के निवासी थे। कश्मीर ब्रह्म विद्या का केन्द्र था। वहां से विद्या ग्रहण कर इनके वंशज जैसलमेर-राजस्थान आकर बसे। राजा सिरमौर के विशेष आग्रह पर पाबुच ब्राह्मण सिरमौर आकर बड़वाला नामक स्थान पर बस गए। वहां से पाबुचों के वंशज स्तौन के निकट चांदनी नामक स्थान पर बसे। चांदनी से एक घटना के कारण पाबुच वंशजों का देश निकाला हुआ और ये कुमारसैन के पाउची गांव में जाकर बसे। वहां से पाबुचों के वंशज चौपाल-कुपवी के चड़ोली गांव के निकट घुरौत गांव पहुंचे और चाड़ की देवी के आराधक बने। घुरौत से पाबुचों की एक शाखा धारचानणा जा कर बस गई। वहां से ही पाबुचों की शाखा वर्तमान खड़कांह, तहसील शिलाई में स्थापित हुई। भाटों के वंशज तहसील चौपाल के खद्दर, भजरोठ, जगराह, हियूंण, बिजौल, गोरवा (सरांह), जिला सिरमौर के क्याना, बंघाटा, कुसेणु, धीरग, थुंबाड़ी, सिद्धोटी, घाटी, कुणा, किणू तथा भूंयोग और शिमला जिले की तहसील रोहडू के नंडला, मसली, गुम्मा, दगोली, पावड़ी चियूनी, पारसा, ग्यांचटा (बड़ोट) भमनोली, टोरसा एवं जुब्बल तहसील में बटाड़ और सभाड़ आदि गांव में स्थापित हैं। चंदाणी लिपि भट्टाक्षरी से ही निकली एक शाखा है। चंदाण ब्राह्मण शिमला जिले की तहसील चौपाल के गांव बटेओडी (भाटेओड़ी) में बसे हैं। चन्दाण भी मूलतः भाट ब्राह्मण ही है। चन्दाण ब्राह्मणों का ज्योतिषीय गणित चन्द्रमान के आधार पर चला करता था। इसी कारण यह ब्राह्मण चन्दाण कहलाए और इनकी लिपि चन्दाणी (चन्दवाणी) प्रसिद्ध हुई। इनके पूर्वजों ने भी विद्या कश्मीर से ग्रहण की। पण्डवाणी लिपि के विद्वान ब्राह्मण तहसील ठियोग जिला शिमला के बलग व चौपाल तहसील के गांव मणेयोटी में स्थापित है। इन वंशजों के पास ही पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपियों के साञ्चा ग्रन्थ व लिपि विज्ञान आज भी सुरक्षित हैं। इनके कुछ वंशज ठियोग तहसील, जिला शिमला और उतराखण्ड के कुछ गांवों में भी जा

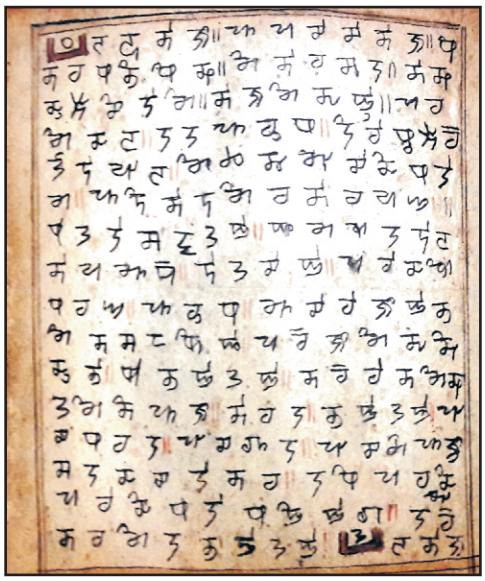

(चन्दाणी साञ्चा पाण्डुलिपि का मूल पाठ)

कर बसे थे। इन ब्राह्मणों की ब्रह्मविद्या परक स्थापनाएं इन क्षेत्रों में भी स्थापित हैं।

पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दवाणी लिपियों के वर्णों, अक्षरों, मात्राओं, अङ्कों और वाक्यों के विश्लेषण से यह सिद्ध हो जाता है कि ये लिपियां शारदा लिपि से ही निकली हैं। इन वंशजों के गुरुकुलों में शारदा का ये स्वरूप इन चार लिपियों को जन्म देने में सहायक रहा है। अब इन लिपियों की भाषा और भाषा में निबद्ध विषयवस्तु पर भी विचार अपेक्षित है। साञ्चा शब्द की व्युत्पत्ति से इन पाण्डुलिपियों की भाषा पर स्वतः ही प्रकाश पड़ता है। साञ्चा अर्थात् संचय अर्थात् संग्रह। पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी अथवा चन्दवाणी लिपियों में निबद्ध साञ्चों में वेद, उपनिषद्, आयुर्वेद, ज्योतिष, रामायण, महाभारत, खगोल विज्ञान और पुराणों के महत्त्वपूर्ण ज्ञान के पक्ष सूत्र रूप में निबद्ध हैं। इन ग्रन्थों की विषयवस्तु संस्कृत भाषा में विद्यमान है। मध्ययुग में जब संस्कृत भाषा

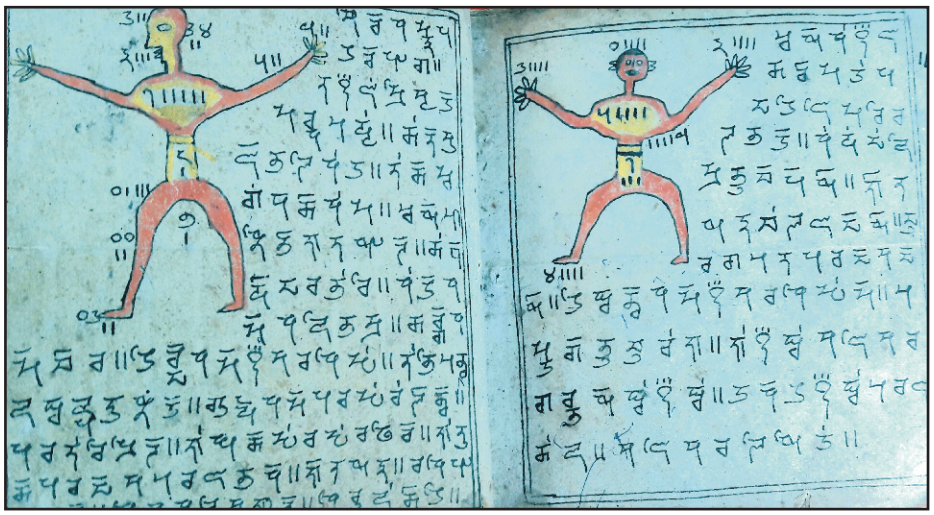

(पाबुची सांचा पाण्डुलिपि में निबद्ध वर्णों का मूल पाठ)

और इसके वाङ्मय पर विदेशियों के प्रहार हुए तो इन गुरुकुलों ने लिपियों में प्राच्यविद्या के इस महान ज्ञान का सञ्चय कर संस्कृत मिश्रित स्थानीय बोलियों अथवा प्राकृत भाषा में निबद्ध किया। साञ्चा पाण्डुलिपि का एक उदाहरण यहां उद्धृत करना प्रासंगिक है। चन्दवाणी साञ्चे में एक स्थान पर उल्लेख आया है– **''प्रदं प्रदं प्रदं तु चेव अक्षाणि पतिता तवम्।। पुत्र जन्म धन लाभ।। इष्ट सुखागम।। सर्व सुखं इञ्च कल्याणम्।। जते मनसे वर्ततेः।।''** इस उदाहरण में संस्कृत भाषा के वाक्य हैं परन्तु बीच-बीच में स्थानीय बोलियों के शब्द भी निबद्ध हैं। साञ्चों में कालगणना, वेद, उपनिषद्, पुराण एवं महाभारतादि संस्कृत वाङ्मय के चरित्र, आख्यान, उपाख्यान और सिद्धान्त संस्कृत मिश्रित प्राकृत बोलियों में इन चार लिपियों में निबद्ध है। अतः इन साञ्चा ग्रन्थों की भाषा मूलतः संस्कृत ही है परन्तु कालक्रम से यह भाषा परिवर्तित हो कर प्राकृत अथवा स्थानीय बोलियों के रूप में दिखाई देती है।

सिरमौर, शिमला, सोलन, उतराखण्ड के जौंसार-बावर जैसे गांव-गांव में आज भी पाबुची, भट्टाक्षरी, पण्डवाणी और चन्दाणी (चन्दवाणी) लिपियों के साञ्चे पाण्डुलिपियों के रूप में उपलब्ध हैं। पाण्डुलिपिकारों ने कालक्रम से इन चार लिपियों में निबद्ध प्राच्य विद्या के ज्ञान को अपनी साधना से जिस प्रकार संजोया है, वह वंदनीय है। ये चारों लिपियां हिमाचल की महान विरासत हैं। इन चार लिपियों की वर्णमाला लेखक ने साञ्चा पाण्डुलिपियों के गहन अध्ययन व इनके जानकार विद्वान ब्राह्मणों के साथ बैठकर स्वयं तैयार की है। लुप्त होती इन लिपियों की महान विरासत को बचाया जा सके, इसी उद्देश्य से इन चारों लिपियों की वर्णमालाओं और साञ्चा ग्रन्थों के मूलपाठ को इस लेख में चित्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ :

१. मनीराम पाबुच का मूल सांचा; ग्राम खड़कांह, तहसील शिलाई, जिला सिरमौर, (हि.प्र.)

२. देवी राम पाण्डे का मूल सांचा; ग्राम मण्योटी, तहसील चौपाल, जिला शिमला (हि.प्र.)

३. स्व. पण्डित लछीराम का मूल सांचा; ग्राम बटेयोड़ी, तहसील चौपाल, जिला शिमला (हि.प्र.)

सह-आचार्य संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय चौड़ा मैदान
शिमला - ४ (हि.प्र.)

नेगी नतीराम (नोतीराम) की हारूल

प्रो. शिव भारद्वाज

सिरमौर रियासत के इतिहास को जानने के लिए हमारे पास राजसी एवं दरबारी लेखन के बहुत कम साक्ष्य उपलब्ध हैं। रियासती इतिहास की कड़ियों को जोड़ने के लिए लोकगाथाएं जीवन्त साधन हैं। सिरमौरी बोली में लोकगाथाओं को हारुल, पोआड़ा, साका आदि कहा जाता है। ये लोकगाथाएं युग प्रवाह की साक्षी है तथा मौखिक इतिहास लेखन की रक्त वाहिनियां हैं, जिन के ज्ञान संचार से क्षेत्रीय इतिहास लेखन संभव है जिस प्रकार पुरातात्त्विक खण्डहरों तथा परतों में दबे पड़े अवशेष प्राचीन इतिहास के साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं उसी प्रकार सिरमौरी लोकगाथाओं में लोकजीवन की अभिव्यक्ति झलकती है।

प्रस्तुत नेगी नतीराम की लोकगाथा (हारुल) मुगलों के पहाड़ी सिरमौर रियासत के साथ सम्बन्धों का वर्णन है। इस लोकगाथा का गायन सिरमौर जनपद के अलावा जिला शिमला तथा उतराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र जौनसार बाबर में तीज-त्यौहार के मौकों पर किया जाता है। प्रथम भाग में हारूल का प्रस्तुत लेख के हिन्दी रुपान्तर और दूसरे भाग में पहाड़ी मूल दिया गया है।

इस लोकगाथा (हारूल) में सिरमौर रियासत तथा उत्तर-मुगल (काल) के मध्य हुए आपसी संघर्ष का ऐतिहासिक वर्णन विद्यमान है। सिरमौर रियासत के शासक राजा किरत प्रकाश की सन् १७७३ ई0 में मृत्यु के पश्चात जगत प्रकाश रियासत के अगले शासक बने। पहाड़ी रियासतों में सिरमौर का विशेष महत्व था। १८वीं शताब्दी में इसकी सीमाएं जुब्बल तथा बघाट रियासतों से लगती थी वहीं दूसरी ओर कलसी (उत्तरकाशी) तथा पिंजौर (हरियाणा) तक फैली हुई थी। सिरमौर रियासत के मुगलों के साथ शाहजहां काल से ही सम्बन्ध रहे थे। किन्तु राजा जगत प्रकाश के काल में दिल्ली में शासित मुगल बादशाह शाहआलम-II, एक कमजोर शासक था। जुलाई १७८८ ई0 में रूहेलखण्ड के पठान (अफगानी) शासक गुलाम कादिर रोहिला ने, जो कि मुगलों का ही अधीनस्थ था, दिल्ली पर अधिकार कर लिया तथा १७ अगस्त १७८८ को मुगल शासक शाह आलम को अन्धा कर दिया और सारी शक्तियां अपने हाथों में ले कर मुगल बादशाह की ओर से शासन करने लगा था। गुलाम कादिर रोहिला अपनी क्रूरता के लिए विख्यात था। दिल्ली जीत के पश्चात उसने अपने साम्राज्य विस्तार के लिए मुगल सेना को दिल्ली से रोहेलखण्ड, हरिद्वार, देहरादून के रास्ते पहाड़ी रियासत सिरमौर पर आक्रमण के लिए भेजा। पठान सेनापति की अगुवाई में मुगल सेना नवम्वर, १७८८ ई0 को सिरमौर रियासत के मैदानी भाग पांवटा-दून पहुंची तथा बिना किसी प्रतिरोध के पावंटा दून तथा क्यारदा दून पर अधिकार कर दिया। मुगल सेना ने टोकियों नामक स्थान पर अपने तंबू गाड़ कर एक बड़ी छावनी

बना डाली। सेना का संख्याबल इतना था कि हजारों मुगल सैनिकों तथा उनके घोड़ों का मैदानी दून क्षेत्र में जमवाड़ा लगने से स्थानीय लोगों में भय और आतंक का माहौल बन गया। मुगल सामन्त ने राजा जगत प्रकाश को युद्ध के लिए चुनौती दी। मुगल सेना दलबल के साथ पावंटा दून घाटी में उत्पात मचाने लगती है। इस विनाश लीला को सुन कर राजा भयभीत हो गया।

इस संकट से उबरने के लिए राजा सिरमौर जगत प्रकाश ने रियासत की राजधानी नाहन में एक बैठक बुलाई जिसमें पूरे राज्य के जेलदारों, गुलदारों तथा मन्त्रियों को बुलवाया गया। उस बैठक में चर्चा हुई कि रियासत के सबसे उपजाऊ क्षेत्र पांवटा-दून पर मुगल सेना ने कब्जा कर दिया है। सेना की संख्या लाखो-हजारों में है। उसके लाव-लश्कर में रथसवार, घुड़सवार, पैदल सैनिक, रसद विभाग, अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारुद विभाग, गुलाम चाकर तथा घोड़े-हाथी आदि शामिल होते थे, मुगल सेना जहां अपना शिविर लगाती थी वह जगह एक शहर में तबदील हो जाती थी। ऐसा प्रतिद्वन्दी सिरमौर रियासत के राजा तथा प्रजा ने पहले नहीं देखा था अतः राजा जगत प्रकाश ने भरी सभा में कहा – ''दरबारियो मुगल सेना ने दून घाटी में ऐसा मंजर बना दिया है कि चारों ओर लाशें ही लाशें बिखरी पड़ी है। मुगल सेना का संख्या बल इतना अधिक है कि सैनिकों के लिए अन्न तथा घोड़ों के लिए घास भी कम पड़ रहा होगा। जब मुगल सैनिक काशी-दून के बाजार में चक्कर काटते हैं तो घोड़ों की पदचाप से उड़ने वाले मिट्टी के गुब्बार आसमान में देखे जा सकते है। जिस तरफ भी ये सेना जाती है उधर अगली पंक्ति के कुछ लोग ही पानी पी पाते हैं उतर-गामी लोगों को भीड़ से दूषित मटमेला जल ही मिलता है। इन मुगल सैनिकों ने मेरी सोने के मोल बराबर उपजाऊ पांवटा दून पर कब्जा कर लिया है। आगे राजा ने कहा कि हमारी सेना या प्रजा में ऐसा कोई वीर बहादुर व्यक्ति है तो मुगल सेना से लोहा ले सके।'' बैठक में उपस्थित सभी दरबारियों में से इस संकट से उबारने के लिए न कोई आगे आया और न ही किसी ने कोई उत्तर दिया। अन्त में राजा ने अजब सिंह गुलदार को सम्बोधित करते हुए कहा कि तुम बताओ ऐसा कोई खशिया (राजपूत) है जो मुगलों को पराजित कर सके। फिर अजब सिंह ने बताया कि गिरीपार क्षेत्र में मलेता गांव का नेगी नतीराम नामक एक बलवान वीर युवक है। मुगल रोहिला का सामना केवल वही कर सकता है। अतः निर्णय लिया गया कि नेगी नतीराम को शीघ्र ही नाहन बुला लिया जावे। राजा जगत प्रकाश ने अजब सिंह गुलदार तथा भोपसिंह सिपाही को मलेता जाने का हुक्म दिया कि वे नतीराम को नाहन लाए।

राजा के आदेश पर अजब सिंह गुलदार तथा भोपसिंह सिपाही मलेता गांव गए और नतीराम नेगी ने कहा कि राजा ने तुम्हें शीघ्र ही नाहन बुलाया है। यह बात सुनकर नतीराम थोड़ा अचम्भित हो जाता है और दोनों से पूछता है कि ऐसा क्या काम आन पड़ा है कि मुझे नाहन बुलाया गया है, तो अजब सिंह गोलदार ने कहा कि राजा का आदेश है नाहन तो चलना पड़ेगा, वहीं सारी बात का पता चलेगा। हे, नेगी नतीराम शीघ्र तैयार हो जाओ नाहन जाने में तुम्हें किसी प्रकार का डर नहीं है। अब राजा के दोनों दूत नेगी नतीराम को लेकर नाहन पहुंच गए। अगले ही दिन उसे राज दरबार में पेश किया गया। राजा जगत प्रकाश नतीराम के फौलादी-बलशाली कद-काठी देखकर चकित रह गया

किन्तु राजा उसकी वीरता एवं कौशल की परीक्षा लेना चाहता था अतः राजा ने भरे दरबार में नेगी नतीराम को हुक्म दिया कि वह दोधारी नंगी तलवार को पीठ-पीछे से म्यान में डाल दे। नतीराम ने अपने साहस तथा युद्धकला का परिचय देते हुए पीठ-पीछे से दोधारी तलवार को जल्दी और सीधी म्यान के अन्दर रख दी।

राजा जगत प्रकाश ने नेगी नतीराम के पराक्रम पर खरा उतरने पर उसकी पीठ थपथपाई और शाबाशी देते हुए कहा कि सचमुच ही तुझे राजपूतनी (रांगड़ी) ने जन्म दिया है और तूने रांगड़ी का दूध पिया है तथा तुझ में राजपूतवाली युद्ध चातुर्य बुद्धि है। वास्तव में तुम एक बलवान योद्धा कहलाने लायक क्षत्रिय वीर हो। यह सुनने के उपरान्त नेगी नतीराम ने राजा से पूछा कि बताए आपने मुझे यहां किस मकसद से बुलाया है।

राजा ने उत्तर देते हुए कहा कि तुम्हें मेरी सहायता के लिए पांवटा जाना पड़ेगा, क्योंकि पावंटे की दून पर मुगलों ने कब्जा कर लिया है। मुगलों को रोकना अत्यन्त आवश्यक है। मुगल सेना ने दून घाटी में गाय-भैंसे आदि को गोश्त के रूप में खा लिया है और शीघ्रातिशीघ्र मुगल सेना नाहन पर भी अधिकार कर लेगी। एक तरफ राजा का आदेश तथा दूसरी तरफ परिवार। थोड़ी देर के लिए नेगी नतीराम का मन छोटा हो गया और वह राजा से कहने लगा कि किसी अनहोनी पर मेरी नेगिन (पत्नी) तथा नेगटू (बच्चों) का भरण-पोषण कौन करेगा? राजा ने आश्वासन देते हुए कहा कि नतीराम तुम्हारी बात सच्ची है यदि ऐसा कुछ होता है तो तुम्हारी पत्नी और बच्चों को राजकोष से हमेशा राशन तथा आजीवन गुजारा भता मिलता रहेगा। केवल भोजन का आश्वासन मिलने से नेगी पावंटा जाने को तैयार नहीं हुआ। फिर राजा ने कहा कि यदि तुम मुगल सेनापति का सिर काट लेते हो, तो मैं तुम्हें कालसी की तहसीलदारी तथा साथ में नाहन दरबार में वजीर बना दूंगा। इतना ही नहीं, तुम्हें मलेता तथा मोहराड़ के लाणे (सीधी जमीन) भी इनाम स्वरूप दूंगा।

तब नेगी नोतीराम/नतीराम पांवटा जाने को तैयार हो जाता है तथा राजा से कहता है कि मेरे पास अच्छा घोड़ा तथा अस्त्र-शस्त्र नहीं है। राजा ने कहा कि मेरे बाईस घोड़ो में से जो तुम्हें पसन्द है उसे चुन लो। राजा सिरमौर के आश्वासन के बाद ढाल-तलवार तथा कांवली (पवन) घोड़े पर सवार हो कर सैनिकों सहित नेगी नतीराम पांवटा दून की ओर चल पड़ता है। रास्ते में कटासन देवी के मन्दिर के पास पहुंच कर नतीराम देवी माता के दर्शन के लिए रूक जाता है। पूजा-आराधना करने के उपरान्त वह देवी माता से युद्ध में देवीय सहायता का वरदान मांगता है कि हे देवी! मां यदि तुम युद्ध में मुगलों को ऐसा चमत्कार दिखाओ जिससे लड़ते समय मुगलों को चार नतीराम दिखने लगे तथा मैं इस युद्ध को जीत जाऊं, तो मैं तुम्हें चांदी के सिक्के तथा दो चांदी के परात एवं ढोल चढ़ाऊगां। साथ ही ऐसा बाजा (वाद्ययन्त्र) भेंट करूंगा, जिसमें बिना बजाए खुद ही नबद (देव पूजा का वाद्य संगीत) बजना शुरू होगी। तदोपरान्त नतीराम घोड़े पर सवार हो कर कोलर पहुंचता है। संध्या के समय वह पावटा पहुंच जाता है जहां वह अपना घोड़ा साल वृक्ष की जड़ में बांध देता है और भोपसिंह सिपाही की निगरानी में छोड़ कर स्वयं गुप्त रूप से आगे बढ़ता है तथा मुगल पहरेदार सैनिक को तलवार से मार गिराता है

तथा उसके सैन्य वस्त्र पहनकर मुगल सरदार के शिविर के पास जा पहुंचता है तथा शिविर के भीतर रात्रि के समय प्रवेश करता है उस समय मुगल पठान सेनापति गहरी निद्रा में था।

नेगी नतीराम को लगता है कि यदि मैं इसे सुप्त अवस्था में मारता हूं तो वह कायरता होगी तथा मैं पाप का भागी बनूंगा। अतः उसने रोहिला पठान सेनापति को जगाया और उसे अवगत करवाया कि मुझे राजा सिरमौर जगत प्रकाश ने भेजा है, तुम्हारी खैर इसी में है कि तुम वापिस लौट जाओ और पावंटा पर अधिकार छोड़ दो। मुगल सेनापति द्वारा वापिस जाने से साफ इन्कार कर दिया। अब नतीराम में राजपूती जोश पैदा हो गया तथा उसने मुगल सेनापति पठान को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ लेकिन अन्त में नतीराम ने तलवार के बार से मुगल सेनापति का सिर काट दिया। उसका कटा सिर थैले में भर कर घोड़े पर सवार होकर नाहन पहुंचता है।

नाहन पहुंचने पर राजा जगत प्रकाश नेगी नतीराम के साहसिक कार्य से अत्यन्त प्रसन्न होता है और उसने पांवटे के युद्ध का हाल बताने को कहा है। नेगी नतीराम राजा को कहता है कि मैं मुगल सरदार की शीरी (सिर) काट कर लाया हूं और वह कटा हुआ सिर राजा के समक्ष रखता है। इस अविश्वसनीय तथा अभूतपूर्व घटना को सुनकर दरबारी बजीर तथा चाकरों (मन्त्री) के मन में ईर्ष्या पैदा होती है तथा उन्होंने जगत प्रकाश को बहका दिया कि यह मुगल सेनापति का सिर नहीं है। वे सब नेगी नतीराम को रियासत का बजीर बनने से रोकना चाहते थे। अतः उन की बातों में आ कर राजा ने नेगी नतीराम को कहा कि इस बात का क्या सबूत है कि यह सिर मुगल सेनापति का ही है। इसलिए राजा ने नतीराम को इस सबूत के साक्ष्य लाने के लिए अपने वजीर के साथ पांवटा जाने का हुक्म दे डाला।

नेगी नतीराम के भाग्य का सूर्य अस्त हो रहा था वह वजीर के साथ दोबारा पांवटा की ओर कूच करता है जैसे ही दून घाटी में जमना (यमुना) नदी के किनारे पहुंचता है तो मुगल सैनिक उसे घेर लेते है, मानों वो उसी की ही प्रतीक्षा में खड़े थे। नेगी नतीराम एक लम्बे सफर के बाद अब थक चुका था किन्तु फिर भी उसने मुगल सैनिकों को मौत के घाट उतारना शुरू किया लेकिन अन्त में मुगल सैनिक नतीराम को मार देते हैं।

जब राजा को नतीराम की मौत की सूचना मिलती है तथा दरबारी षड्यन्त्र का पता चलता है तो राजा को पश्चाताप होता है और वह पांवटा पहुंच कर वीर योद्धा नतीराम का अन्तिम संस्कार करता है। तदोपरान्त अपने वादे के अनुसार मलेता तथा मोहराड़ का लाणा उसके परिवारजनों को देता है। कालसी की तहसील गोरखा युद्ध के पश्चात १८५१ ई. में राजा सिरमौर ब्रिटिश सरकार को युद्ध क्षतिपूर्ति के एवज में सौंप देता है। आज तक भी मलेता तथा मोहराड़ के लोग सरकार को लगान नहीं देते है तथा गुलदार की उपाधि से नवाजे जाते हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि इस युद्ध में मारा गया मुगल सेनापति रोहिला पठान सरदार गुलाम कादिर रोहेला नहीं था। वह कोई अन्य रोहिला का सेनापति रहा होगा क्योंकि गुलाम कादिर रोहेला को ३ मार्च १८६६ में मुगल बादशाह शाहआलम - II के आदेश पर ग्वालियर के महाराजा सिंधिया ने फांसी पर लटका दिया था।

नेगी नोतीराम की हारुल (लोकगाथा)

मौले रे मौलाइए रे, केरी मोलाई,
चारे गोणे महासु रे, चारय भाई।
हाट गाईणी कोटिय री, दुर्गा माई/माय
देअ गाइणा बीजट से, चूड़ री ठाय।
मौले रे मौलाइए रे, केरी मोलाई
दूणी रोआ पावटे री, मुगलो आई।
आई बी रोआ मुगलो से बोहता की थोड़ा।
नौ लाख मुगलों से छः लाख घोड़ा।
आया बोलो मुगल लास ही लास
आदमी खे अन्नटा बी, ना घोड़े खे घास।
काशी बोइजारो दे रे, फिरे दे घूमो।
गोज-गोज माटी ऊडो, घोडे रे सूमो।
आया बोलो मुगलो रे लाखो हजार।
आगले से पाणी पिअले पाछिले गार।
खायपेओ राणिये पावटो तेरो।
खाई पाए दूण पावटे री सूने रे सेरो।
राजे श्री सायबे छाड़े दालतो लाए
बादे राखे मसोती राजे दालते बुलाए।
ओजब सिंहो गोलदारों खे धाव लाए।
ओजबू गोलदार तबे पूछना लाए।
साचे देया ला बातों तू मुई कोए लाए।
ओजबू गोलदारो खे राजे टालणे पाए।
मौले रे मौलाइए रे कैरी मोलाई
ओसो भी कोई खशिया जू देओ मुगलो हराये।
ऐरो लागे बोलदे रे राजे री बेगी।
ऐशे जोगा खशिया अ, मलतिया नेगी।
ओजबू गोलदारा तू मौलथे (मलौता) खे जाए।
नेगी ल्याणा नोतीराम नोयणी खे बुलाए।
ओजबू गोलदारे तबे ढील बी न पाएं।
नईण रा चाला गोया बोईराट आए।
मौले री मोलाईए रे केरी मोलाए।
लिखा रोआ नेगिया नोयणी शा आए।
मौले री मौलाइए रे केरी मोलाए
तांव छाड़ा नोतीराम नोयणी खे बुलाए।
बीजी मेरी गोयणी लागो भूंइए धामो।
नोयणी मेरे भीतरा ऐशा का पोडा कामो।
बातो लाओ नेगी नोतीराग धूधती धूणो।

लिखा आया नोयणी शा जाला ऐबे कूणो ।
बाजा रे बाजुणा बाजो ला बाणा
राजा रा आया हुक्म पोडो नोइणे जाणा ।
बोशो मेरेया सरगा भूंइए पौड़ो ला भौरो,
ताखे नेगी नोतीराम कोसी रा ना डोरो,
धोड़ा नोतीराम चुगानो दा छोड़ा,
आपी हुआ नेगटा कोचाउरी दा खोड़ा ।
राजा श्री सायबे छाड़ा मुंजरा लाए ।
हाथो जोड़ी ओरजो छाड़ी नोतीराम लाए ।
राजा श्री सायबे राखा मंजरा लाए ।
नांगी तोलवारो राजे मोईदानो दी पाए ।
थेयाबी क्वें मोसाति देलाम्यानो भराए ।
छोकरे नोतीराम दी लाघूड जाले आए ।
बांवे हाथे नोतीरामे ऊबी ऊचाए ।
पीठी पाछे नोतीरामे म्यानो भराए ।
पीठी राजे दिता थोपका लाए ।
तांव राखा नोतीराम रांगड़िए जाए ।
सोती पीया नोतीरामा रांगड़ी रा दूधो
तांबदी लागे नोतीरामा राजपूती बूधो ।
बातो लाओ नोतीराम घूधती घूणो ।
सोती तोंए खाए छाड़ा राज रा लूणो ।
मौले री मोलाइए रे केरी मौलाई ।
बात छाड़ी नोती रामे राजेखे लाई ।
मुं तोएं राजेया केंई छाड़ा बोलाए ।
ऐतरे जोगी चाइत मा का रोई आए ।
बाजो रे बाजणा, बाजो ला बाणा ।
तांव पोडो नोतीराम पावटा खे जाणा ।
दूणी दा रोआ पावटे री मुगलो आएं ।
दूणो पाए ले पावटे री मुगले खाए ।
खाएवे पाए मुगले रे मोइश गाए,
धोड़ा पाइन्दी धोडिए मेरी नोयणी खाए ।
लाएबे राखो नोतीरामे रुणारे झुणो,
नेगीणो मेरे नेगटू तोबे धाचला कुणो ।
ऐजी बातो नोतीराम जाए रोई खोटी,
छेडू देऊला नेगीणी खजाने री रोटी ।
चीए रे चीयाली दाबू सोरो ला बांदा,
रोटी रे तांइए राजा साएवा पावटे ना जांदा ।
जे काटी लेया ला नोतीराम मोगलो री शीरी,

कालसी री तोसिलो देऊ, साथी बोटी बेजीरी ।
कोरी ल्येइला नोतीरामा, मोनो रा झाणा ।
ठाई देऊ ला मोलेतेरी, मोराड़ी रा लाणा ।
कान्हो पान्दी बोन्दूको, सीला गोन्दिए तोड़ा,
आथी ने राजेया मेरा घोड़ा ओ जोड़ा ।
शोटी कोरो तोम्बाखू री, भोरी भांगो रा गांजा,
बाईशो घोड़े मुंजी घोड़ा, लो आपणा जांजा ।
हाके लेया नोतीरामे मुगलो रा घोडा
चान्दीयो री बन्दूको दा उबा सुनेरा तोड़ा ।
बाईशो घोड़े मुंजी किया कांवली घोड़ा ।
ऊडाइयो डेया भोइता हाण्डियो घोड़ा ।
सूरो रा थीया मोतवाला बोरेन्डियो रा खोआ,
नेगी नोतीरामो घोड़े पादे अश्वारो होआ ।
देखणे खे नोतीराम बुरासो शा होआ,
घोड़े लाए छटिए, घोड़ा डेउडीए होआ ।
शीरे भीडे नोतीराम पीओली पागो,
आगली गोआ मोजली खे गोणेशोरे बागो ।
बागो रे गणेशो भरा जिआ पाणीए लांबू,
थोडे जिन्दे चाकरो थे भीलोड़े बाबू ।
हाथो दो कोरो नोतीरामो दो धारो खाण्डो,
शोडकी उदो लागो रोओ, धुएं रो डाण्डो ।
गोइलो बाजा फौजो दा विगोली बाजा,
घोड़े पान्दे नोतीरामो जाणीओ राजा ।
आए लागा नोतीरामा कटासणी बूणो ।
आना मीलू सरती ए देवी रो भोणो ।
मोले री मोलाइए रे केरी मौलाइए,
देवी कटासणी गोवा, पोऊंचा जाए ।
घोड़ा जोड़ा नोतीराम शड़की दा छोड़ा,
आपू होआ नोतीरामो भोणो दा खोड़ा ।
चांदी रा दिता रुपिया भेटो खे चढ़ाई,
ऐजी आज देवी माता तेरी मिलाई ।
जै धोरेली देवी माता ऊपीरी बोलो,
जोटी वे देऊ कनाली रे चांदी रो ढोलो ।
जै तो देवी कोरली तु मुगलो खे छोलो,
पाछू आंदे देऊबा, झोटे-मैन्डे री बोलो ।
जै बी जागो देवी मेरे माथे रे भागो,
ऐशा बाजा ल्याऊंगा आपी नोबिन्दा लागो ।
जै तो देवी मेरे जावो तु बोलो दी आए,

तांबे री फोलोइए देऊंला मोन्दिरो छांए।
सूरोरा नेगी मतवाला बोरेन्डियो रा खोआ,
घोड़े पान्दे नेगी नोतीरामो अश्वारो होआ।
बोइतो देणो शांदडो ला पाछी को पाए,
फोउजो लागी नोतीराम री कोलरे आए।
ढीले री ढाकुलिए लागो ला धूरो,
कोलरे पिओ नोतीरामे वोरेन्डी ओ सूरो।
सूते काती टिकरू कपासो री पूणी,
होटी गया नेगी नोतीराम पावटे री दूणी।
धारो दी फूली दुधली घासनी दी गानी,
सालों री तेने जड़ी दा घोड़ा दिया बानी।
भूपसिंहा सपाईया तू लेखाए न भागे,
घोड़ा बान्हा सालों दा तू घोड़ा पाए जागे।
मुगलो रे पोड़ाओ दा पोऊंचा जाए
एक देओ सोपाए तलवारिए घाए।
मोनो दा नोतीरामो तोलो रोई ना कौबी,
तेथू तोएं सोपाइ रे पाए कापड़े बाम्बो।
बातो लावला नोतीराम जीभो रे भोरे,
होटी गोवा नोतीराम मुगलो रे धोरे।
मोले रे मोलाइए रे केरी मोलाइए,
मुगलो रे ताम्बू तांई पोहुंचा जाए।
काटी ले कुचाले नान्दे बाणी ले काप,
सूता काटू मुगलो तो लाग लो पाप।
मुगलो सरकारो री राखी निद्रा उपाए,
मुगलो सरकारो री दिती निदा जगाए।
मुगलो साथी नोतीरामे लाई थोई बातों,
आपू भेदो नोतीरामा टाटू री काटो।
मुगलो सरकारो राखा शायणा लाए,
केथू खे मेरे पावटे दा हाला दिए पाए।
मोले रे मोलाईए रे केरी मोलाई,
राजे रे रोआ हुक्मे आंव पावटे आए।
नेगी नोतीराम दी गोई राजपूती आई,
दुधारे तलवारो री मुगलो खे पाई।
पांवटे दुणी होली चिनकी माटी,
मुगलो पोटाणी री नेगिए शीरी पाई काटी।
मोले रे मोलाईए रे केरे मोलाए
शीरी दीती मुगलो री बेगो दी पाई।
नेगी गोआ ताम्बू दू तोबे बायरे आए,

नेगी नोतीरामो गोआ घोड़े केई आए।
सूरो रा थिया मोतवाला बोरान्डियो का खोया।
नेगी नोतरामो घोड़े अश्वारो होवा।
मोले रे मोलाइए रे केरे मोलाई।
जितिओ मुगलो पाछू नोइण खे आई।
राजे श्री साईवे थोआ पूछणा लाए
बातो दे नेगी नोतरामा तू पावटे री लाई।
ऊबी र राजेया नोइणी, ऊदी डी गिरी।
काटियो आणी थोई मुंए, मुगलो री शीरी।
धारो दी फूली दुधली, घासनी दी गानी,
शीरी ने आथी मुगलों री राजे न मानो।
बाजोला बाजणा बाजो गोइयो रा बाणा
हाण्डो पोड़ो एकियो तांव पांवटे खे जाणा।
मोले रे मोलाइए रे केरे मोलाई,
आपणा देन्दा बाजीरो तेरे साथे खे लाई।
तांव दी रोए नोतीरामा ओबली बोठी,
नेगी रो बोजीरो गोवे पांवटे खे होटी।
मोले रे मोलाईए रे केरे मोलाई,
जमना रे किनारे नेगी पहुंचा जाईं।
मुगलो रे सिपाईए लोआ देखणा लाई,
मुगलो रे सिपाईए तोबे घेरो दा पाई।
पाछू पोऊंचा था पावटे गोला बोइता हारी,
मुगलो रे सोपाइए तबे दिआला मारी।

संदर्भ :

१. हारुल गायक - जयलाल शर्मा, गांव - टिकरी, तहसील नेरुवा, जिला शिमला, (हि.प्र.)
२. हारुल गायक - मंगल सिंह तोमर, गांव - शावड़ी, जिला सिरमौर (हि.प्र.)
३. सिरमौर का इतिहास - डॉ. रुप कुमार शर्मा, अग्रवाल प्रिंटर्स, पांवटा साहिब, (हि.प्र.)
४. हमारा सांस्कृतिक इतिहास (महासुवी गाथाएं) - लच्छीराम गाजटा, वरदान प्रिंटर्स, बड़ा बाजार, बरेली, २००१श
५. हिमजनक - सांस्कृतिक पत्रिका, अंक - ६, वर्ष - २०१८, यशवन्त विहार, नाहन (हि.प्र.)
६. Fall of the Mughal Empire - Jadunath Sarkar, Vol - IV, Orient Longmah Limited, New Delhi - 1950

सहायक आचार्य इतिहास,
राजकीय महाविद्यालय नालागढ़,
जिला - सोलन (हि.प्र.)

चम्बा लोकगाथा गायन ऐंचली एवं मुसाधा में रामायण के ऐतिहासिक प्रसंग

चंचल सरोलवी

चम्बा की अनेक विधाओं में लोकगाथा गायन की भी समृद्ध परम्परा प्रचलित है। इन विधाओं में एंचली व मुसाधा का विशिष्ट स्थान है। ऐंचली और मुसाधा लोकगाथा गायन की शैली में अन्तर पाया जाता है, ऐंचली में तो केवल गाथा का गायन होता है परन्तु मुसाधा में गाथा गायन का प्रसंग गाने के उपरान्त बीच-बीच में स्थानीय भाषा में उसकी व्याख्या कथा के रूप में की जाती है। ऐंचली गायन में चार लोक गायक कलाकार होते है जिन्हें स्थानीय भाषा में 'बंदे' या 'ऐंचलेडे' कहते हैं, मुसाधा गायन में मात्र दो कलाकार होते हैं। पुरुष कलाकार को 'धुराई' और स्त्री कलाकार को 'धुरैण' कहते हैं। मुसाधा लोक कलाकार शायद विश्व में पहला लोक कलाकार है जो एक साथ दो वाद्य यन्त्रों को बजाता हुए गाता है। एक हाथ में वाद्य यन्त्र खंजरी से ताल बजाता है और दूसरे हाथ से गले में लटकाया वाद्य यन्त्र रुबाना (तारवद्य) से संगीत देता हुए गाता है। घुरैण (स्त्री कलाकार) हाथों में कंसी बजाते हुए गाने में साथ देती है।

ऐंचली लोकगाथा नुआल़ा उत्सव में गाई जाती है। नुआल़ा यानि भगवान शिव के निमित्त पूजा, जिसे विशेष पारम्परिक लोकाचार विधि से किया जाता है। चार लोक गायक अपने लोक वाद्य के साथ गाते हैं। पहले दो लोक कलाकार अपने वाद्य ढोलक और नगाड़ा की ताल पर पहली कड़ी गाते हैं तो दूसरे दो व्यक्ति (लोक कलाकार) जिनमें एक के पास घड़ा (कुंभ) पर रखी उलटी कांसे की थाली रखी होती है उसे लगभग एक फुट लम्बी बारीक लकड़ी की छड़ी से बजाते हुए प्रथम गाई हुई कड़ी को दोहराते हैं।

एक प्रसंग यहां उद्धृत है जिसमें महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ को समझाते हुए कहता है कि जो तेरे सात कुल (वंश) जलमग्न हुए है उनके उद्धार के लिए तुम कौशल्या से विवाह कर लो। राम का अवतार होगा। तेरे वंशजों को स्वर्ग प्राप्ति होगी। राक्षसों का संहार होगा। तेरे पाप भी समाप्त हो जाएंगे।

प्रस्तुत है लोकगाथा का मूल अंश –

सत्त कुल तेरे जला विच डुब्बे हो,
ते सेइयो कुल तरण तेरे स्वर्गा हो।।१।।
सत्त कुल .....
ते विस्वामित्र लगा वो समझाणा हो,
ते सुणे दस्सरथा तू गल मेरी हो।।२।।
ते विस्वामित्र.....
ते गढ़लंका वसदा कोई राजा हो,

ता अठकौंसल राजा वो लोढ़ा हो।।३।।
ता तिस राजे दे घरे कोई कन्या हो,
ता तिस कन्या दा नां कुसलेया हो।।४।।
ता तिस कन्या जो राजा तू वियाल्ला हो,
ता तां हूणे घरे राम अवतारा हो।।५।।
ता तेरे सत्त कुल वो तरी जाणे हो,
ते तेरी जुद्देया दा होणा उजाला हो।।६।।
ते तेरी देही दे पाप घटी जाणे हो,
ते राजा असूर संघार होई पाणा हो।।७।।

मुसाधा : मुसाधा लोक गायन का आयोजन भगवान् शिव के निमित्त नई फसल होने पर मांगी गई मन्नत पूर्ण होने पर किया जाता है जिसमें मुसाधा लोक गायक घर-घर जाकर अपना गायन सुनाकर नई फसल बधाई के रूप में प्राप्त करता है।

प्रस्तुत लोकगाथा मुसाधा में पंचवटी का संक्षिप्त वृत्तान्त है। एक दिन पंचवटी के जंगल में राम और लक्ष्मण शिकार खेलने के लिए गए हुए थे। विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छांव तले बैठ गए। उस वृक्ष पर बहुत सी चिड़ियों के बच्चों ने शोर मचाया हुआ था। लक्ष्मण बहुत क्रोधित हुए और अपने धनुष बाण से उन्हें मारने लगे। राम ने लक्ष्मण को समझाया कि यह जंगल के पंछी हैं यह बोलते ही रहते हैं। इन्हें मत मारो। इन्होंने हमारा क्या बिगाड़ा है। अतः तुम शान्त हो जाओ और आराम करो परन्तु लक्ष्मण नहीं माना और उसने अपने धनुष बाण से चिड़ियों के बच्चों सहित उनका घौंसला नीचे जमीन पर गिरा दिया। बच्चे सब मर गए।

इक्क ता दिन रामा कैसे वरतोरे
राम जाणे हों, महाराज जाणे हो-जी - २
राम लछमण ते सीता नार
राम जाणे हों, महाराज जाणे हो जी - २

व्याख्या : कथा के रूप में स्थानीय भाषा में – जी साहब जी, ता महाराज इक्क दिन कदेहा बरतोरा जी, भगुआन राम, लछमण ते सीता नारी, मेरे राम जाणे जी –

पंचवटी मझ डेरे थिए लगोरे
राम जाणे हो महाराज जाणे जी - २

व्याख्या : इन्हां पंचवटी मझ डेरे थिए लाये दे। चौदाह सालो दा वणवास थिए गुजारणा लगोरे। फिरी अग्गे कै हुंदा सुणा महाराज जी।

इक्क दिन राम मेरे गल लग्गे लाणा
मेरे राम जाणे जी, महाराज जाणे जी हो जी - २
मेरे राम बात लगे करणा,
मेरे राम जाणे जी महाराज हो जी- जी - २
चार पैहर रात गुजसद लगी हुणां
मेरे राम जाणे जी महाराज जाणे जी - जी - २
तां कै बोलदा मेरा जुद्देया दा राम
मेरे राम जाणे जी, महाराज जाणे जी-जी - २

व्याख्या : जी मेरे महाराज, हां जी, इक्क दिन कदेहा वीतया जी, चौथा पैहर रात गुजरी चली ते भ्यागे दा बेला लग्गेया हुणा ता राम अपणे भाऊ लछमणा जो गलांदे जे भाऊया अज्ज असां नेड़े तेड़े ही सकार खेलणा। भ्यागा उठ्ठी नित-नियम कित्ता ते फिर कंदमूल दी नुहारी खाई ते पंचवटी दे जंगला जो सकार खेलणा चली पे।

हां वो धन मेरे जुद्देया दे रामा हों जी जी - २
हरि गौविंदा मेरेया हो जी जी।
दिन भरी हेड ते सकार, हरि राम हो - २
मेरे जुद्देया देया रामा हों जी जी - २
हों लैणा तेरा नामा हों जी जी - २

व्याख्या : जी महाराज! राम ते लछमण महाराज ने पंचवटी बणां मंझ दिन भर हेड़ सकार खेलेया। अते महाराज धुप भी कड़ाके दी थी ते लछमण गलांदे, हे राम भाऊया। दो घड़ी राम करि लैंदे, राम ने गलाया खरी भाऊया। उत्ते इक्क बड़ी दा बूटा थिया ते तसेरे हेठ वैई आराम लगे करणा। ता महाराज बुटे ऊपर कै माया लगी हूणा - सुणा –

मेरेया रामा लैणा तेरा नामा हां जी
हे रामा मेरेया हां जी जी - २
उस बणां रामा बड़ा रोला थिया पियोरा,
जुद्देया दे रामा लैणा तेरा नामा हां जी जी - २
चिड़ू देया बच्चेया रोला थियू पौरा वो
मेरेया भुगूआना लैणा तेरा नामा जी जी - २
बच्चेया ऐसा रोला थिया पौरा वो
कन्न ता भाऊया खाई लाये छड्डणा
पण कै बोलदा रामा, लछमण भाऊया वो
राम जी मेरेया, गल सुण भाऊया मेरेया जी जी - २

व्याख्या : जी साहब जी, जी मेरे महाराज भुगूआन बड़ी दे बुटे हेट बेई बसांह तै करणा लगे दे ता महाराज बड़ी दे बुटे ऊपर चिड़ू देयां बच्चेयां इतणा रौला थिया पाए दा उन्हां दी चैं-चैं ने जिंया कन्न खाई छड्डे। लछमण बड़ा भारी क्रोधमान होया ते राम जो गलांदा। भाऊ इस रौले विच मेरे किच्छा नी वैंई हूणा ते तूसा हुक्म दैण ता मैं इन्हां दी चैं चैं मुकाई छड़ां। ता राम कै गलांदा सुणा –

कै पण बोलदे हे रामा
जुद्देया दा राम वो मुरेया रामा हां जी - २
लैणा तेरा नामा हां जी - जी - २
इन्हां पर भाऊया ईंधा कै है गुआया हो
कजो भरणे लछमण भाऊआ हे जी-जी - २
है ता बणां दे पंछी भाऊया हुणे हो
ऐ ता बोलदे ही रैहंदे लछमण भाऊआ है जी जी - २

व्याख्या : जी मेरे महाराज जुद्देया दे राम गलांदे लछमण भाऊआ इन्हां जो किज्जो मारणा। इन्हां म्हारा कै है गुआया। ए ता बणां दे पंखेरू हिन ए ता बोलदे ही रैहंदे।

थर-थर कम्में मेरे लछमण भाऊया
महणुओं गोविंदा राम हे हे जी - २
कम्मी जियां परिथवी सारी महाणुओं
गोविंदा रामा मेरेया हों हे जी जी - २
जिनी धणकबाण हत्या लायें लैणा
मेरेया गोविंदा राम हे जी जी,
जिनी बाण रामा छड्डी लाये दैणा राज्जेया रामा,
भला मेरेया रामा हों जी जी - २
सणे बच्चेया वो सणे आल्ले मेरे राज्जेया रामा,
भला वो मेरेया रामा हों जी जी - २
ते भूमि भारे लाये वो सुट्टणा मेरे राज्जेया रामा,
भला वो मेरेया रामा हो जी जी - २
ते सणे आल्लेयां बच्चे मारे मुक्काये हे रामा,
भला वो मेरेया रामा हो जी जी - २

व्याख्या : जी मेरे महाराज, जिस वक्ता राम ने बोलेया जे ए किज्जो मारणे ता ए सुणी लछमण थर-थर कम्मी बड़े भारी क्रोधमान होये। अते ना आव दिक्खेया ना ताव अते हथा धणक बाण पकड़ी करि महाराज उन्नी बाण छड्डी दिता ते फिरी कै दिखणा सणे आल्ले ते सणे चिड़ू दे बच्चेया जो मारे भूंयां सुट्टेया। ते सारा चैं चैं रोला खतम होई गेया। लछमण ने राम पासे दिक्खेया राम जो दिक्खी लछमण दा सारा क्रोध छूंमन्त्र होई गेया। अते चिड़ूआं दे बच्चेयां जो दिक्खी करि लछमण बड़ा पछताया पर हुण कै फायदा, सियाणे सच बोलदे क्रोध नी करणा या चाइदा।

गाथा पदों में इतिहास

ऐंचली लोक गाथा के सात पदों में राजा दशरथ के सात वंशों के जलमग्न होने तथा विश्वामित्र द्वारा उनके उद्धार के लिए कौशल्या से विवाह करने का प्रस्ताव ऐतिहासिक है। विष्णु के सप्तम अवतार की पृष्ठभूमि, गाथा के इन सात पदों में निबद्ध है।

रामायण के इस ऐतिहासिक आख्यान को गाथाकार ने अपनी बोली में निबद्ध किया है। ऐंचली गायन वस्तुतः श्रुति परम्परा से चला करता है। यह गायन एक विशिष्ट परम्परा में चला करता है। रामायण के कथानक और उपाख्यान पृथक्-पृथक् रूप से इस गायन परम्परा में प्रस्तुत किए जाते हैं। मुसाधा गायन में पहले गाथा प्रस्तुत की जाती है तत्पश्चात् उसके कथानक को कथाशैली में प्रस्तुत किया जाता है। मुसाधा के पदों और कथा प्रसंगों में भी रामायण के राम, लक्ष्मण, सीता, दशरथ और अन्य ऐतिहासिक चरित निबद्ध है। ऐंचली गाथाकार और मुसाधा गाथाकार रामायण के कथानकों, आख्यानों, उपाख्यानों और युगयुगीन कालक्रमिक ऐतिहासिक संदर्भों को मधुर शैली में आज भी प्रस्तुत करते हैं। यही ऐंचली और मुसाधा गाथाओं का ऐतिहासिक महत्त्व है।

गांव व डाकघर सरोल
तह. व जिला चम्बा (हि.प्र.)

भारतीय ग्रहवेध परम्परा का इतिहास

विनोद कुमार शर्मा

आकाश में घूमने वाले ग्रह नक्षत्र व तारागणों को बिना किसी उद्देश्य के नग्न चक्षु से देखना ''अवलोकन'' कहलाता है। इन्हीं खगोलीय पिण्डों को निरन्तर व प्रतिदिन देखना ''प्रेक्षण'' कहलाता है। इसे ही दृष्टिवेध भी कहते है। आकाशस्थ ग्रहादि पिण्डों को किसी यन्त्र, नलिका या यष्टि के माध्यम से देखना यन्त्रवेध कहलाता है। विश्व की अनेक सभ्यताओं में ग्रह नक्षत्रों को जानने की व तदनुसार दिक् देश व काल आदि प्रश्नों का उत्तर जानने की प्राचीन परम्परा रही है। परन्तु भारत में यह ग्रह वेध परम्परा अतिप्राचीन व वैदिक काल से ही चली आ रही है। भारतीय ऋषियों ने निरन्तर सूर्यादि ग्रहों को टकटकी लगाकर देखते हुए इनकी ग्रहगतियों को जानने में सफलता हासिल की है। दीर्घतमा ऋर्षि तो सूर्य का सतत दर्शन करते हुए अन्धत्व को प्राप्त हो गये थे। इतना ही नहीं भारतीय ऋर्षियों ने ही सर्वप्रथम नक्षत्रों की पहचान करते हुए इन्हें संज्ञाए दी है। वैदिकवाङ्मय में मिलने वाले नक्षत्रों के नाम इसका प्रमाण है। यजुर्वेद[1] में नक्षत्रदर्शक ज्योतिषि का व छान्दोग्योपनिषद्[2] में नक्षत्र विद्या का उल्लेख मिलता है। याजुष् ज्योतिष[3] में सौरमान व चान्द्रमान के वेधजन्य अध्ययन से अधिमास की बात की गई है। ब्राह्मणग्रन्थ[4] में पुष्य नक्षत्र में बृहस्पति का प्रथम उदय बताया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र[5] में वेध का स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में जगह-जगह खपिण्डों का रहस्यमय ज्ञान वेधपरम्परा का प्रमाण है। श्रुति (वेद) के बाद स्मृति ग्रन्थों में द्वादश राशियों, नवविधकालमान[6] व नवग्रहों का स्पष्टतः उल्लेख प्राप्त होता है[7]। महाभारत में उल्कापात[8], ग्रहयुति[9] आदि आकाश में घटने वाली घटनाओं का उल्लेख भारत में ग्रहवेध की समृद्ध परम्परा का सूचक है। महाभारतकाल में ग्रहों व नक्षत्रों के बारे में जन सामान्य भी सम्यक् परिचित था। महाभारत काल में नग्नदृष्टि से ही ग्रह नक्षत्रों को देखकर फल की कल्पना की परम्परा थी। महाभारत में कई प्रसंगों से नक्षत्र परिचय का पता चलता है। जैसे कृष्णद्वैपायन मुनि व्यास गगनस्थ ग्रह नक्षत्रों की स्थिति को देखकर महाविनाश की सूचना धृतराष्ट्र को देते है[10] –

श्वेतो ग्रहो यथा चित्रं समतिक्रम्य तिष्ठति।
धूमकेतुः महाघोरः पुष्यं चाक्राम्य तिष्ठति।।

इसी प्रकार कर्ण व अर्जुन के युद्ध की तुलना विमार्गस्थ ग्रहों से की है[11] –

''लोकत्रसंगतावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव''

कर्ण ग्रहस्थिति को देखकर युद्ध की सम्भावना कृष्ण को बताता है-

विशेषेण हि वार्ष्णेय चित्रं पीड्यते ग्रहः।
सोमस्य लक्ष्म व्यावृतं राहुरर्कमुपैति च।।

अर्थात् चन्द्रमा का कलङ्कचिन्ह बढ़ा हुआ दिखाई दे रहा है व राहु सूर्य के सन्निकट जा रहा है इसलिए युद्ध होकर रहेगा। इसी प्रकार महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद जब बलराम तीर्थ यात्रा से लौटते है तो वो भी कृष्ण को कहते है[१३] –

''पुष्येण प्रयातोऽस्मि श्रावणे पुनरागतः''

पुष्य नक्षत्र से श्रवण नक्षत्र तक १८ दिन होते है। बलराम पुष्य नक्षत्र में गये थे व श्रवण नक्षत्र में लौट आये थे। तब तक महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था।

जिस प्रकार महाभारत के पात्र ग्रह नक्षत्रों की स्थिति को देखकर शुभाशुभ की सूचना एक दूसरे को देते है इससे पता चलता है कि महाभारत काल में जन सामान्य भी आकाश से परिचित था व ग्रह नक्षत्रों की गति से सम्बन्धित जानकारी भी थी, जिससे दृष्टिवेध का पता चलता है।

ग्रहवेध परम्परा (१०० ई. - १५०० ई. तक)

यह काल ग्रहवेध परम्परा का परिवर्तन काल था। इस समय दृष्टिवेध के स्थान पर ग्रह को गणित से जान लेने के बाद यन्त्रों से ग्रह के सत्य असत्य परीक्षण की परम्परा का विकास हुआ। ग्रहों की गति को गणित से जानना ''गणितागत'' व यन्त्रों से साक्षात् आकाश में देखना ''यन्त्रवेध'' कहलाता है। अर्थात् गणितागत ग्रह आकाश में दिखता है या नहीं इसी परीक्षण को भारतीय सिद्धान्त ज्योतिष व खगोलशास्त्र में ''दृक्गणितैक्य'' कहा जाता है।

इस काल में ग्रहगणित के अद्भुत् व अद्वितीय विद्वान् वराहमिहिर, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, लल्ल, श्रीपति, भास्कराचार्य व कमलाकर आदि भारत में उत्पन्न हुये। इन्होंने ग्रह नक्षत्रों से सम्बन्धित चरित्र को जानने के लिए पञ्चसिद्धान्तिका, ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, शिष्यधीवृद्धि, सिद्धान्तशिरोमणि व सिद्धान्ततत्वविवेक आदि ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में ग्रहगणित के साथ-साथ ग्रहवेध हेतु (ग्रह को प्रत्यक्षतः देखने हेतु) त्रिप्रश्नाधिकारों व यन्त्राधिकारों का भी निबन्धन किया गया है। यन्त्राधिकारों में ग्रह वेध हेतु व काल के गत अवयवों को जानने हेतु कई यन्त्रों की निर्माण प्रक्रिया व वेध प्रक्रिया का वर्णन है।

गोलो नाडीवलयं यष्टिः शङ्कुघटी चक्रम्।
चापं तुर्यं फलकं धीरेकं पारमार्थिकं यन्त्रम्।।[१४]

भास्काराचार्य कहते है कि विना यन्त्रों के दिन के गतावयवों को नहीं जाना जा सकता।[१५]

''दिनगतकालावयवाः ज्ञातुमशक्या यतो विना यन्त्रौः''

ग्रहगणित की शुद्धता का परीक्षण प्रत्यक्षतः आकाश में ग्रहणादि घटनाओं को देखकर ही किया जा सकता है। गणित से जिस समय ग्रहण कहा गया है, उस समय यदि वेध करने पर ग्रहण नहीं हो रहा हो तो इसे गणित में दोष होना माना जाता है। खगोलीय गणित या ग्रह गणित में कालानुसार दोष आ जाना स्वावभाविक है। गणितागत ग्रह व वेध से प्राप्त ग्रह में अन्तर आना ''दृग्गणितैक्य''

नहीं कहा जाता है, ऐसी स्थिति में गणित में कुछ बीज संस्कार करना होता है।

आधुनिक काल में ग्रहवेध की स्थिति १६ वीं शताब्दी - अब तक

भट्टकमलाकर तक (१६०० ई.) ग्रहवेध हेतु ताम्रादि धातु से रचित चल यन्त्रों के द्वारा ग्रहवेध किया जाता था। परन्तु ताम्रादि धातु से बने यन्त्र ग्रीष्म काल में विस्तीर्ण होकर अशुद्ध परिणाम देने लग जाते थे। ऐसी स्थिति में ग्रहवेध को लेकर औरंगजेब के समय में एक समस्या खड़ी हो गई थी। गणित व दृश्य में समन्वय बैठाना एक चुनौती बन गई थी। इस समस्या का समाधान किया जयपुर नरेश सवाई जयसिंह ने। इन्होंने ग्रहवेध हेतु प्रस्तर वेधशलाओं का निर्माण करवा कर दृग्गणितैक्य की समस्या को दूर किया। इन्होंने पाश्चात्य व अरबीय वेधशालाओं का अध्ययन कर प्रसिद्ध विद्वानों की सहायता से ग्रहनक्षत्रों के खगोलीय तथ्यों की वेधजन्य सारणी बनवाई। इस सारणी का नाम तत्कालीन मुगल बादशाह मुहम्मदशाह के नाम पर ''जिजमुहम्मदशाही'' रखा गया है।[१६] इसी सारणी से जयपुर राज्य के पंचांग बनने लगे थे।

सवाई जयसिंह के समय में (विक्रमी सं. १७५६ से १८००)[१७] ग्रहवेध हेतु प्रयुक्त होने वाले ताम्रादि धातु निर्मित चल यन्त्रों का स्थान अब प्रस्तर निर्मित स्थिर वेधशालाओं ने ले लिया था। ये वेधशालायें भारत में सुप्रसिद्ध स्थानों जयपुर, दिल्ली, बनारस, उज्जैन व मथुरा में स्थित है। यहाँ से आज भी ग्रह वेध किया जा सकता है। हालांकि ग्रहवेध व खगोल विज्ञान जगत में अत्याधुनिक व वैज्ञानिक क्रान्ति होने के बाद इन ताम्र-प्रस्तरादि वेधशालाओं का औचित्य समाप्त प्राय है। इसके स्थान पर आधुनिक वेधशालाओं में दूरबीन जैसे उन्नत वेध यन्त्रों का प्रयोग होने लगा है। अब ग्रहगणित की भी आधुनिक पद्धतियाँ आ गई है व कई Application के माध्यम से तुरन्त ग्रहगणित हो जाता है, व इसके परीक्षण हेतु TELESCOPE में ही कई सिस्टम लगे होते है। इसलिए भारतीय वेध परम्परा व सिद्धान्त ज्यौतिष विषय इतिहास के विषय के रूप में मार्गदर्शन कर रहे हैं व संस्कृत विश्वविद्यालयों में इसे प्राचीन खगोल विज्ञान के तौर पर पढ़ाया जाता है।

निष्कर्ष

भारतीय खगोलीय गणित व ग्रहवेध विज्ञान भारत के लिए गौरव का विषय है। भारत ने ही सर्वप्रथम शून्य, भूभ्रमण, भू आकर्षण के सिद्धान्त दुनिया को दिये है। आज यद्यपि सूक्ष्म यन्त्रों से आकाश का कोई कोना छिपा नहीं है तथापि भारतीय ऋषियों ने योगबल से ही ग्रहगतियों व ग्रहों के भौतिक स्वरूप को जानकर वेदों व शास्त्रों में वर्णित किया है। सवाई जयसिंह ने वैज्ञानिक तथ्य से परिपूर्ण वेधशालाओं का निर्माण उस समय कराया था जब पूरी दुनिया युद्ध की विभिषिका से पीड़ित थी, यह हमारे लिए गौरव का विषय है। भारतीय ऋषियों की योग परम्परा सच में अद्‌भुत है, जिसके दम पर ऋषियों ने **यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे** के सूत्र से पूरे ब्रह्माण्ड को अपने शरीर में देखा था।

संदर्भ :

१. यजुर्वेद (३०-१०)

२. छान्दोग्योपनिषद् (७-१-२, १-१-४, ७-२-१, ७-१-१)
३. द्यूनं द्विषष्टिभागेन हेयं सूर्यात्सपार्वणाम् ।
यत्कृतावुपजायेते मध्ये चान्तेऽधिमासकौ ।। या.ज्यो., श्लो. ३७ ।
४. बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसम्बभूव । तै.ब्राह्मणे । ३/१/१ ।
५. ध्रुवमरुन्धतीं सप्तर्षीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत आश्वलायनगृह्यसूत्रम् १/७/२२
६. मनुस्मृतिः, १/६८-८६
७. याज्ञवल्क्यस्मृतिः, आचारा., २९५
८. महाभारतम्, उद्योगपर्व, १४३
९. महाभारतम्, शल्यपर्व, ११-१८
१०. महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय -३, श्लोक १२
११. महाभारत कणपर्व, अध्याय - १८, श्लोक २२
१२. महाभारत उद्योगपर्व, अध्याय - १४३, श्लोक १०
१३. महाभारत गदापर्व, अध्याय - ५, श्लोक ६
१४. सिद्धान्तशिरोमणिः यन्त्रध्यायः, श्लोक - १
१५. सिद्धान्तशिरोमणिः, यन्त्रध्यायः, श्लोक -१
१६. प्रस्तरवेधशाला (प्रो.भास्कर श्रोत्रिय) पृ. ५०
१७. कच्छवाहावंशमहाकाव्यम्

शोधार्थी,
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान
जयपुर, राजस्थान

शिवसंहिता व घेरण्डसंहिता में वर्णित हठयोग के आसन प्रकरण की तुलना

विकास नड्डा

वर्तमान समय में हठयोग का जो अंग सर्वाधिक प्रचलित दिखाई पड़ता है वह है आसन। अधिकतर लोग आसन और प्राणायाम को ही योग मानने लगे हैं। सामान्य जनमानस में आज यही धारणा बनी हुई है कि शरीर सौष्ठव, शारीरिक व मानसिक बीमारियों से मुक्त रहना, बस यही योग के लाभ हैं। वर्तमान में कई अन्य तरह के व्यायामों व संगीत के साथ आसन करने का प्रचलन बढ़ा है, परन्तु हठयोगिक ग्रन्थों[1] में आसनों का अति महत्वपूर्ण स्थान है। आसन मात्र शरीर सौष्ठव के लिए नहीं हैं अपितु यह तो योग मार्ग के सच्चे साधक को आध्यात्म उच्चतम अवस्था तक ले जाने की सीढ़ी की तरह हैं। योग सूत्र में महर्षि पंतजलि आसन को इस प्रकार परिभाषित करते हैं - 'स्थिरम सुखम आसनम' जिसका अर्थ है शरीर की वह स्थिति जो सुखदायक और स्थिरता देने वाली हो। 'आसन' राजयोग के बाहरी अंगों में से एक है। ध्यान व समाधि आदि आन्तरिक अंगों की प्राप्ति या इस दिशा में प्रवेश हेतु आसनसिद्धि आवश्यक है क्योंकि ध्यान आदि में प्रवेश के लिए एकमात्र योग्यता एक स्थिति में अनन्त समय तक सुखपूर्वक बैठने की क्षमता है। इसलिए हठयोग में 'आसन' अति महत्वपूर्ण कहे गए हैं। परन्तु राजयोग अनुसार यह योग्यता किसी एक आसन को ही सिद्ध करने से प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए अन्यान्य योगासनों को साधने या अभ्यास करने की आवश्यकता अष्टांगयोगानुसार प्रतीत नहीं होती है। इसके विपरीत हठयोग में आसनों को प्रमुखता प्रदान करते हुए हठप्रदीपिका जैसे ग्रन्थों में आसानों का स्थान प्रथम है। हठयोग में यह मान्यता है कि विभिन्न व विशेष आसानों के सतत् व निरन्तर अभ्यास से शरीरगत नाड़ियों में शक्तिप्रवाह को बाधा मुक्त व सशक्त बनाकर चक्रों को जागृत किया जा सकता है। हठयोगानुसार आसनों के अभ्यास से शरीर पर नियन्त्रण करने की क्षमता को विकसित की जा सकती है। शरीर पर नियन्त्रण होने से मन पर नियन्त्रण की क्षमता प्रकट हो जाती है। योगासनों के सतत् अभ्यास द्वारा शारीरिक व मानसिक ऊर्जा का योग के उच्चतम अभ्यासों के लिए एक मजबूत आधार के रूप में प्रयोग किया जाता है। आसन करने से शरीर और मन में स्थिरता आती है, रोगों से मुक्ति मिलती है और शरीर के अंगों में हलकापन आता है। अधिकतर हठयोग ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि ८४ लाख योनियों के आधार पर ८४ लाख ही आसन है। हठयोग के प्रत्येक आसन का सम्बन्ध या सापेक्षता, किसी न किसी वस्तु या जीव से अवश्य है जिसका यह आशय है कि भारतीय योगियों ने प्रत्येक वस्तु या जीव की अवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण कर वर्षों के शोध से यह अनुभव प्राप्त कर लिया था कि किसी आसन विशेष का शरीर व मन पर क्या प्रभाव पड़ता है जैसे कि वृक्षासन से मेरुदण्ड पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है व शरीर

की लम्बाई बढ़ाने में सहायक है। सर्वांगासन से थायरायड के हार्मोन स्राव को सुचारू किया जा सकता है। अर्धमत्स्येन्द्र आसन से पैनक्रियाज़ को ठीक रखा जा सकता है। इस प्रकार जीव व वस्तुओं की अवस्था विशेष से हठयोगियों ने स्वास्थ्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के रहस्य को खोज निकाला था।

शिवसंहिता व घरेण्डसंहिता दोनों हठयोगिक ग्रन्थ हठयोग के प्राचीन व आधारभूत ग्रन्थ माने जाते हैं। दोनों हठयोग ग्रन्थों में आसनों की विशद व्याख्या मिलती है। शिवसंहिता में तीसरे अध्याय में प्राण आदि व कुंभक (प्राणायाम) की व्याख्या करने के पश्चात 'आसन' प्रकरण का स्थान आता है। आसनों से पूर्व कुंभक की व्याख्या के समय ही आवश्यक दिशानिर्देश दिए गए हैं जिन्हें नियमों के रूप में वर्णित किया गया है। इन सभी दिशा निर्देशों के अन्तर्गत गुरु आज्ञा का पालन, गुरु सेवा, आत्मविश्वास, अभ्यास हेतु उचित स्थान, शुद्ध मनःस्थिति व आलस्य त्याग आदि के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त नैतिक आचरण अपनाने पर भी बल दिया गया है जिसमें अभ्यास काल में आशतेय भाव न रखना, द्वेष, अंहकार, कुटिलता, असत्य बोलना, मोहग्रस्त होना व दूसरे प्राणियों को कष्ट देना आदि त्याज्य आचरण के बारे में बताया गया है।[२] शिवसंहिता में चूंकि एक ही अध्याय में प्राणायाम व आसन वर्णन प्राप्त होता है इसलिए योगाभ्यासों से पूर्व पालन किए जाने वाले आचरण सम्बंधी निर्देशों को दोबारा कहने से बचने के लिए प्रारम्भ में ही इन नियमों का वर्णन कर दिया गया है। आसन और प्राणायाम के अभ्यास में भोजन, आचरण, मनःव्यवहार एक जैसा ही होता है। इसलिए शिवसंहिताकार प्रारम्भ में ही दोनों योगांगों के लिए निर्देश देते हुए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार जिज्ञासुओं के लिए इन दोनों के अभ्यासकाल में क्या-क्या आवश्यक है यह जानना सुगम हो जाता है। शिवसंहिता में कुल चार आसनों का वर्णन मिलता है। आसनों की व्याख्या से पूर्व स्वयं भगवान शिव यह रहस्योद्घाटन करते हैं कि अनेक प्रकार के चौरासी आसन उसके द्वारा उद्घाटित किए गए हैं। उनमें से चार ग्रहण करने योग्य हैं जिनका वे वर्णन करते हैं – सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन।[३] आसनों की व्याख्या 'शिवसंहिता में वर्णन हठयोग' के अन्तर्गत 'आसन' प्रकरण में ही कर दी गई है विशेष बात यह है कि शिवसंहिता में स्वयं भगवान शिव आसनों का वर्णन करते हैं। शिवसंहिता में वर्णित प्रत्येक आसन के साथ प्राणायाम व किसी न किसी बंध को जोड़ दिया गया है। शिवसंहिता में आसन व्याख्या के पश्चात् उसके लाभों का वर्णन सारगर्भित रूप में किया गया है। जिन में शारीरिक व मानसिक लाभों के साथ-साथ आध्यात्मिक लाभ भी वर्णित किए गए हैं।

प्रथम आसन सिद्धासन के लाभ बताए गए हैं कि इसके अभ्यास से योग में पूर्णता प्राप्त होती है यह आसन योग में सिद्धि प्रदान करने वाला है इत्यादि।[४]

द्वितीय आसन पद्मासन के लाभों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि यह आसन सभी बीमारियों को नष्ट करने वाला तथा प्राणों को योगी के अनुकूल बनाने वाला व योगी को मुक्ति प्रदान करने वाला है।[५]

तृतीय आसन पश्चिमोत्तान से जठराग्नि प्रदीप्त होती है व शारीरिक कष्टों का नाश हो जाता है व इसके अभ्यास से प्राणवायु सुषुम्णामार्ग से प्रवाहित होने लगती है।[६]

चतुर्थ आसन स्वस्तिकासन से शरीर में व्याधियां नहीं होती और समस्त दुखों का नाश हो जाता है।[७] शिवसंहिता के तीसरे अध्याय में जिन योग की चार अवस्थाओं (आरंभावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था, निपतिअवस्था) का वर्णन किया गया है। उन अवस्थाओं की सिद्धि के किए १२ घंटे तक एक ही आसन में बैठने की क्षमता को आवश्यक माना गया है। ऐसा करने पर आसन पूर्ण नियन्त्रण से ही संभव हो सकता है। इसलिए भी शिवसंहिता में मुख्य चार ही आसानों पर केन्द्रित किया गया है।

इसके विपरीत घेंरडसंहिता में आसनों का क्रम षट्कर्म के पश्चात है जो कि हठपरम्परा के अनुसार ही है। शिवसंहिता में जहां प्राणायाम से चित्त व शरीरगत नाड़ियों के शुद्धिकरण पश्चात् आसनों की व्यवस्था की गई है, घेरण्डसंहिता में षट्कर्मों द्वारा शरीर शोधन की बात कही गई है। हठ परम्परा सम्मत यह छः शोधन क्रियाएं आसन अभ्यास पूर्व आवश्यक हैं। इन क्रियाओं से शरीर का मल शोधन होकर विषाक्त तत्त्व बाहर निकल आते हैं। परिणास्वरूप शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं और आसनों के अभ्यास के लिए शरीर की तैयारी हो जाती है। घेरण्डसंहिता में आसनों का प्रभाव व्याख्याता आदिनाथ शिव को ही माना गया है।[८] शिवसंहिता में मुख्य चार आसनों का वर्णन है जिसमें सभी आसन बैठी हुई स्थिति के हैं। इन चार आसनों में से तीन (सिद्धासन, पद्मासन, स्वस्तिकासन) ध्यान की तैयारी के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रकार शिवसंहिता में ध्यान की तैयारी हेतु आसनों का क्रम व व्याख्या दी हुई प्रतीत होती है। वहीं दूसरी ओर घेरण्डसंहिता में विविध प्रकार के ३२ आसनों का वर्णन है[९] जिसमें सभी प्रकार के प्रमुख आसन सम्मलित हैं। घेरण्ड संहिता में जितने भी आसनों की चर्चा की गई है उनमें आसन की प्रारम्भिक स्थितियों की व्याख्या न कर केवल अन्तिम और पूर्ण स्थिति की व्याख्या देखने की मिलती है। घेरण्डसंहिता में वर्णित ३२ आसन इस प्रकार से हैं– १. सिद्धासन, २. पद्मासन, ३. भद्रासन, ४. मुक्तासन, ५. वज्रासन, ६. स्वास्तिकासन, ७ सिंहासन, ८. गोमुखासन, ९. वीरासन, १०. धनुरासन, ११. मृत्तासन, १२. गुप्तासन, १३. मत्स्यासन, १४. मत्स्येन्द्रासन, १५. गोरक्षासन, १६. पश्चिमोत्तासन आसन, १७. उत्कटासन, १८. संकटासन, १९. मयूरासन, २०. कुक्कुटासन, २१. कूर्मासन, २२. उत्तान आसन, २३. मंडूकासन, २४. उत्तानमंडूकासन, २५. वृक्षासन, २६. गरुड़ासन, २७. वृषासन, २८. शलभाससन, २९. मकरासन, ३०. उष्ट्रासन, ३१. भुजंगासन, ३२. योगासन।

घेरण्ड संहिता में आसनों के लाभों पर बहुत अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है। आसनों से शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक लाभ क्या-क्या होंगे इनको बहुत ही संक्षिप्त बताया गया है जो कि एक पंक्ति भर में सिमट कर रह जाते हैं। अधिकतर योगासनों को योग की सिद्धि में लाभकारी तथा कई आसनों को सभी रोग हरने वाला कहा है। शिव संहिता में जहां कुंभक (प्राणायाम) प्रकरण आसनों

से पूर्व उल्लेखित हैं वहीं घेरण्ड संहिता में षट्कर्म के पश्चात, मुद्राबन्ध व प्राणायाम आदि से पूर्व आसनों का वर्णन दिया गया है।

इस प्रकार दोनों हठयोग ग्रन्थों के आसन प्रकरण की तुलना करने से यही तथ्य सामने आते हैं कि आसनों का अभ्यास सम्पूर्ण शरीर की नाड़ियों को शुद्ध कर शरीर को स्वस्थ बनाता है। साथ ही साथ शरीर में लचीलापन, सहजता, स्थिरता, सौम्यता और मन में आत्मविश्वास जागृत होता है। शरीर में प्राणशक्ति के प्रवाहित होने से प्राणायाम, ध्यान आदि में सहायता मिलती है और साधक को योग की उच्चतर अवस्थाओं के लिए अग्रसर होने में सहायता मिलती है।

संदर्भ :

१. श्लोक १.१७ हठ प्रदीपिका
२. श्लोक ३.३६,३७ शिवसंहिता
३. श्लोक ३.९६ शिवसंहिता
४. श्लोक ३.९९ शिवसंहिता
५. श्लोक ३.१००,१०१ शिवसंहिता
६. श्लोक ३.१०५ शिवसंहिता
७. श्लोक ३.१०९ शिवसंहिता
८. श्लोक २.१ घेरण्डसंहिता
९. श्लोक २.२ घेरण्डसंहिता

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

१. शिवसंहिता, कैवल्यधाम, श्री मनमाधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला,
२. घेरण्डसंहिता, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मूंगेर, बिहार, ISBN : ८१-८६३३६-३५-४
३. हठप्रदीपिका, कैवल्यधाम, श्री मनमाधव योग मन्दिर समिति, लोनावाला, ISBN : ८१-८९४८५-१२-१
४. आसन प्राणायाम मुद्रा बन्ध, योग पब्लिकेशन ट्रस्ट, मूंगेर, बिहार, ISBN : ८१-८५७८७-५२-२
५. स्वस्थवृत्त-विज्ञान, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली
६. हठ प्रदीपिका ज्योत्सना, कैवल्यधाम, श्री मनमाधव योग मन्दिर समिति, लोनावला, ISBN : ८१-८९४८५-१३-X

शोधार्थी,
महात्मा गांधी ग्रामोदय विश्वविद्यालय
चित्रकूट, मध्य प्रदेश

पर्व विशेष

गुरु-परम्परा एवं महर्षि वेदव्यास

डॉ. ओम दत्त सरोच

भारतीय मान्यता के अनुसार परमेश्वर से सृष्टि और वेदज्ञान का प्रादुर्भाव साथ-साथ ही हुआ। जैसा कि, ऋग्वेद के मन्त्र से स्पष्ट है –

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जाज्ञिरे तस्माद् यजुस्तमादजायत् ।। (ऋ.१०-९०-९)

सृष्टि के विकास क्रम में ऋषियों को तपोबल से यह वेद ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने मन्त्रों के रूप में इस ज्ञान को प्रकट करके लोकगम्य बनाया। इसीलिए कहा गया है – **''ऋषयो मन्त्र दृष्टारः।''** अर्थात् ऋषियों ने वेदमन्त्रों का दर्शन (साक्षात्कार) किया। तपस्वी ऋषियों द्वारा दृष्ट (प्राप्त) इस वेद-ज्ञान का लोक में प्रसार गुरु शिष्य परम्परा से हुआ। क्योंकि वेद का अध्ययन श्रुतिपरम्परा अर्थात् गुरु मुख से सुनकर मौखिक रूप से ही होता रहा है, इसलिए वेद को श्रुति भी कहा जाता है। सृष्टि के आदि ज्ञान के स्रोत वेद के अध्ययन-अध्यापन गुरु परम्परा से होने के कारण भारतीय संस्कृति में गुरु परम्परा की नींव पड़ी है। इसलिए उक्ति प्रचलित है कि – **''गुरु के बिना ज्ञान नहीं तथा ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं।'' ''ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः''।**

वेद एक ही है। एक वेद को प्रक्रिया एवं विषय के अनुसार चार भागों (संहिताओं) के रूप में संकलित करने का महान् कार्य महर्षि वेद व्यास जी ने किया है –

अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रेचतुर्विधम्।। भागवत पुराण १२-६-४९

वेद के देवस्तुतिपरक मन्त्रों को ऋक् संहिता (ऋग्वेद) यज्ञपरक मन्त्रों को यजुःसंहिता (यजुर्वेद) गाये जाने वाले मन्त्रों को साम संहिता (सामवेद) तथा विविध विषय वाले मन्त्रों को अथर्वसंहिता (अथर्ववेद) के रूप में संकलित करके अपने चार प्रधान शिष्यों को एक-एक संहिता का ज्ञान दिया। ऋषि पैल को ऋग्वेद, वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमन्तु को अथर्ववेद का ज्ञान देकर वेद व्यास जी ने गुरु शिष्य परम्परा का सूत्रपात किया –

ऋगथर्वयजुःसाम्नां राशीनुद्धृत्य वर्गशः।
चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव।।
तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः।।
पैलाय संहितामाद्यां..... स्वशिष्याम् सुमन्तवे।। भा.पु. १२-६-५०-५३

इसीलिए महर्षि वेद व्यास को गुरु शिष्य परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है तथा उनकी जयन्ती आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा या व्यास पूर्णिमा पर्व के रूप में मनाया जाता है।

व्यास परम्परा : सृष्टि का आरम्भ कल्प से होता है और कल्प के अन्त में सृष्टि का प्रलय (अन्त) हो जाता है। एक कल्प की अवधि में चौदह मन्वन्तर होते हैं। एक मन्वन्तर में ७१$\frac{६}{७४}$ चतुर्युग होते हैं अर्थात् चारों युग सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग जब इकहत्तर बार बीतते हैं, तो एक मन्वन्तर बनता है। इस समय श्रीश्वेतवराहकल्प का सातवां मन्वन्तर वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तर के सताईस चतुर्युग बीत चुके हैं तथा अठाईसवां चतुर्युग चल रहा है। अठाईसवें चतुर्युग का अठाईसवां कलियुग बीत रहा है।

विष्णु पुराण में वर्णन है कि प्रत्येक मन्वन्तर के प्रत्येक द्वापर युग के अन्त में भगवान विष्णु व्यास के रूप में अवतार लेते हैं तथा वेदों का उद्धार (संकलन) करते हैं। क्योंकि वैवस्वत मन्वन्तर के अठाईस द्वापर युग बीत चुके हैं तथा प्रत्येक द्वापर में व्यास का अवतार हो चुका है। अब तक अठाईस व्यास हो चुके हैं जिनके नाम इस प्रकार से हैं। १. ब्रह्मा, २. प्रजापति, ३. शुक्राचार्य, ४. बृहस्पति, ५. सूर्य, ६. मृत्यु, ७. इन्द्र, ८. वसिष्ठ, ९. सारस्वत, १०. त्रिधाया, ११. त्रिसिख, १२. भारद्वाज, १३. अन्तरिक्ष, १४. वर्णी, १५. त्रय्यारूण, १६. धनंजय, १७. क्रतुजय, १८. जय, १९. भारद्वाज, २०. गौतम, २१. ध्र्यात्मा, २२. वाजश्रवा, २३. तृणबिन्दू, २४. ऋक्ष, २५. शक्ति, २६. जातुकर्ण, २७, पराशर, २८ कृष्ण द्वैपायन व्यास। (वि.पु. ३-३-११-१८)।

श्रीकृष्ण द्वैपायन बादरायण व्यास : वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के अठाइसवें द्वापर में महर्षि कृष्ण द्वैपायन वादरयाण व्यास के रूप में अवतरित हुए हैं। इनकी वंश परम्परा महर्षि वसिष्ठ से जुड़ती है। ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में ऋषि वसिष्ठ भी एक है। वसिष्ठ के पुत्र शक्ति, शक्ति के पराशर तथा पराशर के वेद व्यास हुए। इनकी माता का नाम सत्यवती था जो कि एक धीवर (मछुआरे) की कन्या थी। ऋषि पराशर व सत्यवती के प्रणय सम्बन्ध से व्यास का जन्म हुआ। इनका जन्म गंगा के एक द्वीप (टापू) पर हुआ अतः इनके नाम के साथ द्वैपायन जुड़ा, बदरी (वेर) के वन में जन्म के कारण वादरायण कहलाये तथा रंग कृष्ण (सांवला) होने के कारण कृष्ण और वेदों का उद्धार करने के कारण वेद व्यास कहलाये। इस प्रकार इनका पूरा नाम महर्षि कृष्ण द्वैपायन वादरायण वेदव्यास हुआ। इन का जन्म स्थान कानपुर के निकट काल्पी नाम स्थान माना जाता है।

हिमाचल भूमि के साथ महर्षि वेद व्यास का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। बिलासपुर की बंदलाधार में स्थित व्यास गुफा व्यास जी की तपोस्थली है। व्यासगुफा के कारण ही बिलासपुर का पुराना नाम व्यासपुर भी रहा है। व्यास जी के परदादा वसिष्ठ जी का स्थान वसिष्ठ (मनाली के निकट) स्थित है, उनके पिता पराशर की तपोस्थली पराशर-झील (जिला मण्डी) प्रसिद्ध स्थान है। व्यास जी के पुत्र शुकदेव का क्षेत्र सुकेत (सुन्दरनगर) रहा है। शुकदेव शब्द का ही अपभ्रंश सुकेत है। इस प्रकार व्यास जी की वंश परम्परा का सम्बन्ध हिमाचल प्रदेश से रहा है।

व्यास जी का कृतित्व : भगवान के चौबीस अवतारों में व्यास की गणना होती है। ये ज्ञान के साक्षात् अवतार है। इन्होंने ज्ञान के विभिन्न स्रोतों वेद, पुराण, दर्शन, स्मृतियां व महाभारत आदि को अपने तप एवं मेधा से प्रकट करके मानव जाति का महान उपकार किया है।

एक वेद का चार वेदों के रूप में संकलन करके व अपने एक-एक शिष्य को एक-एक वेद का

ज्ञान देकर उन्होंने वेदाध्ययन की गुरु शिष्य परम्परा की स्थापना की । इस परम्परा की स्थापना से ही वेद का प्रसार लोक में हुआ व चारों वेदों की एक हजार एक सौ इक्तीस शाखाओं का प्रचलन हुआ।

वेदों के संकलन एवं सम्पादन के अतिरिक्त व्यास जी अठारह पुराणों के रचयिता भी माने जाते हैं। व्यास जी ने अपने चार शिष्यों को चार वेदों का ज्ञान तथा एक अन्य शिष्य रोमहर्षण को पुराण-संहिता का ज्ञान दिया। यही मूलपुराण संहिता अठारह पुराणों के रूप में प्रचलित हुई। पुराणों के अतिरिक्त महर्षि वेदव्यास का महान् कार्य विश्व के सबसे बड़े काव्य महाभारत की रचना है। लगभग एक लाख श्लोकों का यह महाकाव्य धर्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति व भारतीय विद्याओं के ज्ञान का भण्डार है। विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ श्रीमद्भागवतगीता भी इसी महाभारत का भाग है। भारतीय दर्शन शास्त्रों की परम्परा में प्रसिद्ध वेदान्त दर्शन का मूल सिद्धान्त ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' भी महर्षि वेद व्यास की अनुपम कृति है। 'व्यास स्मृति' तथा 'व्यास शिक्षा' इनके अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

महर्षि वेद व्यास की तपोभूमि बिलासपुर हिमाचल प्रदेश तथा उनकी कर्मभूमि श्री वदरीनाथ क्षेत्र में माना नामक गांव रहा है। माना गांव में व्यासगुफा तथा शिला के रूप में स्थित व्यास पोथी इसके प्रमाण है। ऐसा माना जाता है कि व्यास जी चिरंजीवी है। आज भी हिमालय के बदरीनाथ क्षेत्र में विचरण करते हैं, तथा कई सिद्ध पुरुषों ने उनके दर्शन होने का दावा भी किया है। माता सत्यवती जो कि बाद में राजा शान्तनु की पत्नी बनी थी, उनके अनुरोध पर व्यास जी विचित्रवीर्य और चित्रांगद की पत्नियों पर दृष्टिपात करके धृतराष्ट्र और पाण्डु के जन्म का कारण बने व गुरुकुल की परम्परा को आगे बढ़ाया।

इस प्रकार महर्षि वेद व्यास का प्रादुर्भाव भारतीय ज्ञान-परम्परा में सूर्य के समान है। वर्तमान में भी महर्षि वेद व्यास का प्रभाव व अस्तित्व प्रत्यक्ष है। वेद का संकल्प एवं सम्पादन करके अध्ययन-अध्यापन की गुरु-शिष्य परम्परा व्यास जी ने स्थापित व प्रचलित की थी। इसी वेदपरम्परा का विस्तार वेद की विभिन्न शाखाओं के रूप में हुआ। आज भी शाखा-परम्परा से वेदाध्ययन होता है। ज्ञान व मुक्ति प्राप्त करने के लिए गुरु-धारण करने की परम्परा व्यास द्वारा स्थापित गुरु-शिष्य परम्परा का ही अनुसरण है। पुराणदि कथाओं के प्रवचन की परम्परा भी व्यास-परम्परा है, क्योंकि व्यास जी ने ही अपने शिष्य रोह हर्षण को पुराण संहिता का प्रवचन करके इस परम्परा को चलाया था। इसीलिए, आज भी कथा-प्रवचनकर्ता को 'कथा व्यास' तथा उनके आसन को 'व्यासगद्दी' या 'व्यास-आसन' कहा जाता है। विद्वान व्याख्याकार को भी 'व्यास' कहने की परम्परा ज्ञान का विस्तार एवं प्रसार करने वाले महर्षि वेदव्यास से जोड़ती है। इस प्रकार महर्षि वेद व्यास जी भी ज्ञान के प्रकाश पुंज के रूप में हमारे बीच विद्यमान है। गुरु परम्परा के प्रवर्तक महर्षि वेदव्यास को उनकी जयन्ती आषाढ़ पूर्णिमा पर शत-शत नमन।

प्राचार्य (सेवानिवृत)
संस्कृत महाविद्यालय चकमोह,
जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

ध्येय-पथ

गतिविधियां

प्यार चन्द परमार

हिमाचल प्रदेश के समग्र इतिहास लिखने का संकल्प

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी में कलियुगाब्द ५१२०, विक्रमी संवत् २०७६, माघ शुक्ल १०-११ (१५-१६ जून, २०१९) को आयोजित द्वि-दिवसीय चिन्तन वर्ग में कुल ३८ शोधकर्त्ताओं ने भाग लिया। यह शोध संस्थान के वैचारिक पक्ष का वार्षिक कार्यक्रम है। इसमें दो दिन शोध संस्थान द्वारा चलाए गए शोध कार्यों तथा भविष्य के विषय में विचार-विमर्श होता है। इस चिन्तन वर्ग में सभी विद्वानों ने एक मत से हिमाचल प्रदेश के समग्र इतिहास लेखन का संकल्प लिया। यह चिन्तन वर्ग दो दिनों में छः सत्रों में विभाजित रहा। उद्घाटन सत्र में कार्यक्रम की अध्यक्षता संस्थान के महासचिव श्री भूमिदत्त शर्मा ने की। इस सत्र में अपने वृत्तान्त वक्तव्य में संस्थान के वैचारिक पक्ष के निदेशक डॉ. ओमप्रकाश शर्मा ने संस्थान की दशा और दिशा पर प्रकाश डाला। उन्होंने संस्थान की गतिविधियां एवं हिमाचल प्रदेश में इसके कार्यक्षेत्र में वृद्धि को विस्तारपूर्वक अवगत कराया। अपने उद्बोधन में उन्होंने नेरी शोध संस्थान को राष्ट्र चिन्तन परम्परा के नैमिषारण्य की भूमिका में देखा। यह परम्परा हमारी विरासत है। हमें चिन्तन, मनन, अध्ययन और लेखन के दृष्टिकोण को अपने कार्य में अपनाना चाहिए। लेखन सतत् साधना का एक महान कर्म होता है। इस कर्म के चिन्तन, मनन, अध्ययन और लेखन ये चार मूलभूत सिद्धान्त हैं। लेखक का व्यक्तित्व उसकी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, और आत्मा इत्यादि तत्त्वों का समन्वित रूप होता है। सर्वप्रथम ज्ञानेन्द्रियां किसी विषय के साथ सम्बन्ध होती हैं। चिन्तन का कार्यक्षेत्र उसी क्षण प्रारम्भ हो जाता है। लेखन का दूसरा पक्ष मनन तब सक्रिय होता है, जब ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रस्तुत

समापन सत्र में श्री चेतराम गर्ग सम्बोधित करते हुए

विषय पर निर्णय की स्थिति आती है। इस क्षण विषयवस्तु निर्णय की स्थिति में नहीं होती। तत्पश्चात जानने के लिए उत्सुकता पैदा होती है। इस प्रक्रिया से अध्ययन की प्रवृत्ति बनती है। साधक ज्ञान के लिए बहुपाठी बनने के पश्चात् अपना एक मत तैयार करता है और लेखन की ओर प्रवृत्त होता है। लेखन के लिए लेखक का व्यक्तित्व, उसका मनोस्थिति और उसकी लेखन की अभिव्यक्ति, ये तीन ईकाइयां महत्त्व रखती है। मन, हृदय और मस्तिष्क-चिन्तन, मनन, अध्ययन और लेखन के मूलभूत सिद्धान्तों से जुड़े रहते हैं। लेखन के लिए वाणी और हस्त (हाथ) कर्मेन्द्रियां भी साधना करती है। यही लेखन के चार मूलभूत सिद्धान्त हैं और इन्हीं सिद्धान्तों से लेखन कर्म संभव है। इसी सत्र में संस्थान के वृत्तान्त को प्रस्तुत करते हुए संस्थान के निदेशक श्री चेतराम गर्ग ने ठा. राम सिंह जी का स्मरण करते हुए संस्थान के संकल्पों को दोहराया और बताया कि यह संस्थान किस प्रकार भारत के यथार्थ इतिहास के स्वरूप को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए सतत समर्पित है। उन्होंने गत वर्षों में संस्थान द्वारा किये गये कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि हम संस्थान के वैचारिक पक्ष को दो तरह से देख सकते हैं – एक तो संस्थान के संस्थापक एवं मार्गदर्शक श्रद्धेय ठाकुर रामसिंह के साथ हम सब विद्वानों ने काम किया है।

माधव भवन के प्रांगण में उपस्थित विद्वानों का छायाचित्र

उनका ज्ञान, अनुभव और चिन्तन विराट था। उन्होंने अपने समय में ही हमें दिशा-निर्देश भी पुस्तक प्रकाशित कर हमारा मार्गदर्शन किया है। इतिहास केवल घटनाओं व जानकारियों का ही साक्ष्य नहीं है बल्कि वह समाज कल्याण की वर्तमान तथा भविष्य का दिशा-निर्देश करता है। वेद, पुराण, संहिताएं तथा महाकाव्य हमारा मार्गदर्शन क्यों और कैसे कर रहे हैं? यदि इन ग्रन्थों में समाज कल्याण के तत्व न होते तो क्या इन की मान्यता बनी रहती? कदापि नहीं। आज भी ये हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं और शोधकर्त्ता लगातार उसमें यह ढूंढता रहता है कि जो सूत्र में दिया गया है उसकी कड़ी को कैसे जोड़ता जाऊं? भागवत सप्ताह पाठ की परम्परा आज विस्तृत समाज में व्याप्त है। शाश्वत ज्ञान का अर्जन करना और समाज के समक्ष रखना विद्वानों का कार्य है। हम सब लोग शोध संस्थान में इतिहास में घटित घटनाओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समझकर मानव सभ्यता को सुसंस्कृत करते हुए मानव को जीव जगत के अनुकूल व्यवहार करने हेतु प्रेरित करने का प्रयास कर रहे हैं। यही समाज कल्याण है। हम ठाकुर रामसिंह जी के दिखाए गए मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं जिससे एक तो इतिहास के

विकृतिकरण का निराकरण हो रहा है दूसरे भारत की इतिहास पद्धति का अनुसरण करते हुए समाज कल्याण का कार्य हो रहा है। आज भारतीय समाज को यह समझ आ गया है कि परतन्त्र काल में हमारे अन्दर आए अवगुणों को त्यागना होगा। अपने ज्ञान को हेय समझना और पश्चात्य ज्ञान को ही श्रेष्ठ समझना त्यागना होगा। यदि हमारा ज्ञान अधूरा होता तो क्या कोई इतने लम्बे समय तक कोई समाज टिकता? दो चार हजार वर्ष की बात करने वाले हमारे मार्गदर्शक नहीं हो सकते। हमें यह बात समझनी होगी। इस सत्र के अन्त में श्री भूमिदत्त शर्मा ने अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन से सभी शोधार्थियों का उत्साहवर्धन किया।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता डा. रमेश चन्द्र शर्मा ने की। इस सत्र में डा. सूरत ठाकुर ने बताया कि शोध लेखन कार्य किस प्रकार से प्रारम्भ किया जा सकता है। डा. भागचन्द चौहान ने कहा कि विज्ञान और इतिहास के सम्बन्धों के आधार पर भी अनुसंधान अपेक्षित है। डा. कृष्णमोहन पाण्डेय ने कहा कि बाणभट्‌ट कालीन (सप्तम शताब्दी) इतिहास को बाणभट्‌ट के अनुसार प्रस्तुत करने की अपेक्षा है जिससे भारतीयों का इतिहास भारतीयों के नजरिये से जाना जा सके। डा. राकेश कुमार शर्मा ने जनरल जोरावर सिंह के ऐतिहासिक महत्त्व को प्रस्तुत किया। डा. अंकुश भारद्वाज ने बताया कि हम १९१९ में घटित जलियावाला बाग हत्याकाण्ड की समीक्षा पर शीघ्र ही हि. प्र. विश्वविद्यालय शिमला में एक संगोष्ठी आयोजित करने वाले हैं जिससे इस काण्ड की सच्चाई सबके समक्ष आ सके। डा. मनोज ने इतिहास और वाणिज्य के अन्तर्सम्बन्ध की दृष्टि से शोध करने पर बल दिया। इसी प्रकार अगले तीन सत्रों में डा. किशोरी चन्देल, डा. प्रियाभिषेक शर्मा आदि अनेक विद्वानों ने अपने अपने सुझाव प्रस्तुत किये। विद्वानों ने सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि हिमाचल प्रदेश का समग्र इतिहास शोध संस्थान नेरी से लिया जाएगा। समापन सत्र में डा. ओम प्रकाश शर्मा ने शोधार्थियों का मार्गदर्शन करते हुए बताया कि यह चिन्तन वर्ग नैमिषारण्य की चिन्तन परम्परा का अग्रिम सोपान है। भारत के यथार्थ इतिहास को भारतीयों के समक्ष इसी चिन्तन परम्परा से प्रस्तुत करने का यही प्रामाणिक मार्ग है। अन्त में उन्होंने हिमाचल प्रदेश के इतिहास को आद्योपान्त पुनः प्रस्तुत करने के लिए लेखकों की एक समिति का गठन किया जो इतिहास लेखन के सभी अनुसंधानत्मक पक्षों पर विचार करते हुए इस कार्य को सम्पन्न करेंगे। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक चेतराम गर्ग ने सभी कार्यकर्ताओं का उत्साहवर्धन करते हुए अग्रिम मार्गदर्शन किया। इस चिन्तन वर्ग की विशेषता रही कि सभी विद्वान अपने लिए कार्य लेकर गए हैं।

सप्त सिन्धु/ पंजाब का इतिहास : एक पुनरावलोकन (विचार गोष्ठी)

इतिहास विभाग हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय सप्त सिन्धु परिसर देहरा, जिला कांगड़ा व ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के संयुक्त तत्त्वाधान में कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (७ जून, २०१९) को **'सप्त सिन्धु/पंजाब का इतिहास : एक पुनरावलोकन'** विषय पर विचार गोष्ठी का आयोजन सप्त सिन्धु परिसर देहरा में किया गया। कार्यक्रम में हिमाचल प्रदेश

केन्द्रीय विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. हरमोहेन्द्र सिंह वेदी मुख्यातिथि के रूप में उपस्थित रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री कुलपति हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय ने की। मुख्यवक्ता के रूप में श्रीमान् संतोष तनेजा मौजूद रहे। यह वर्ष गुरु नानक देव जी का ५५०वां प्रकाशोत्सव वर्ष है। उनका केवल पंजाब ही नहीं अपितु भारत व विश्व के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अफगानिस्तान एवं पंजाब का सम्पूर्ण क्षेत्र प्राचीनकाल में सप्त सिन्धु के नाम से प्रसिद्ध था। सप्त सिन्धु का यह क्षेत्र अपने वर्तमान स्वरूप में पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, लद्दाख, गिलगित एवं पूरे पाकिस्तान जिसमें सिन्ध, वलूचिस्तान, खैबर पख्तूनखबा और पश्चिमी पंजाब शामिल हैं, तक विस्तृत है। यह भौगोलिक ईकाई जिसको वैदिक काल में सप्त सिन्धु कहा जाता था। यह क्षेत्र कालान्तर में सिकुड़ कर पंजाब (पञ्चनद) कहा जाने लगा। पंजाब का इतिहास सिन्धु और सरस्वती नदी के तटों से भी शुरू होता है। इस सप्त सिन्धु क्षेत्र पर ८वीं शताब्दी में सबसे पहले अरब

आक्रान्ता मुहमद-बिन-कासिम ने आक्रमण किया, परन्तु वह सिन्धु नदी को पार नहीं कर सका। १००० ई. में तुर्क महमूद गजनवी व ११७५ ई. में महमूद गौरी ने भारत पर आक्रमण करके इस क्षेत्र की संस्कृति को भारी क्षति पहुंचाई। मुहम्मद गौरी के आक्रमणों के परिणास्वरूप १२०६ ई. में भारत में पहली बार मुसलमानों ने सता को प्राप्त किया व दिल्ली सल्तनत की स्थापना की। १५२६ ई. में मुगल आक्रान्ता बाबर द्वारा दिल्ली सल्तनत को समाप्त करके मुगल वंश की स्थापना भारत में की। बाबर द्वारा आम जनता पर किए गए अत्याचारों का कड़ा सामना करने के लिए भारतीय समाज में नई चेतना जागृत हुई। तुर्कों, अफगानों और मुगलों के इस संघर्ष काल में सप्त सिन्धु क्षेत्र में दश गुरु परम्परा की शुरुआत हुई। इस परम्परा ने सप्त सिन्धु/पंजाब के इतिहास को नया रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और मुगलों को पंजाब से खदेड़ने में सफलता हासिल की।

विचार गोष्ठी में मुख्यातिथि प्रो. हरमोहेन्द्र सिंह वेदी ने सप्तसिन्धु जैसे विषय पर चर्चा करने पर संन्तोष व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि हमें सप्तसिन्धु के उस इतिहास को खोलना चाहिए जहां पर वेदों की रचना हुई है। यही वह स्थल है जहां पर विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद की रचना हुई है। सप्त सिन्धु का इतिहास, इतिहास की अनेक कड़ियों को खोलने वाला है। उन्होंने कहा कि सप्तसिन्धु/पंजाब के इतिहास में दशगुरु परम्परा का महत्वपूर्ण योगदान रहा जिसके उन्नायक श्री गुरु

नानक देव जी थे। इस मौके पर डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री ने कहा कि हमारे समाज में व्यापक रूप से जम्बूद्वीप की चर्चा होती है उसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी अध्ययन करने की आवश्यकता है। हमें सप्त सिन्धु व जम्बूद्वीप के इतिहास का अध्ययन करना होगा। उन्होंने कहा कि सप्तसिन्धु क्षेत्र में इतिहास को मुसलमान आक्रान्ताओं जो कि भिन्न-भिन्न फिरकों के थे, ने विकृत किया। इस विकृतिकरण की आंधी को रोकने का कार्य श्री गुरु नानक देव जी ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में यात्रा करके किया। पंजाब में स्थापित इसी दशगुरु परम्परा ने विदेशी आक्रान्ताओं को देश से बाहर निकालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस मौके पर श्री संतोष तनेजा से कहा कि सम्पूर्ण विश्व को अध्यात्म की शिक्षा भारत ने दी है। हमारी ज्ञान परम्परा व्यापक है। उन्होंने कहा कि सप्तसिन्धु क्षेत्र के इतिहास का पुनरावलोकन समय की मांग है। हमें भारतीय दृष्टिकोण से इसका पुनरावलोकन करना आवश्यक हो जाता है।

संगोष्ठी में दिल्ली से प्रो. जगवीर सिंह सेवानिवृत आचार्य, पंजाब से डॉ. धर्मजीत सिंह, चण्डीगढ़ से गुरपाल सिंह, पटियाला से डॉ. मनजीत कौर, फगवाड़ा से श्री अवतार सिंह वेदी, चण्डीगढ़ से श्री हरपाल सिंह, वटाला से डॉ. नरेश कुमार, डॉ. भीमराव आम्बेडकर पीठ केन्द्रीय विश्वविद्यालय हिमाचल प्रदेश से प्रो. बलवान गौतम, जनजातीय पीठ हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय से गोष्ठी के संयोजक प्रो. संतीश गंजू, कपिल सूद, शोधार्थी किस्मत कुमार, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के समन्वयक एवं निदेशक व राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना श्रीमान चेतराम गर्ग, ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी से प्रकाशित 'इतिहास दिवाकर' के सम्पादक डॉ. राकेश कुमार शर्मा, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला के अनेक शोधार्थी व इतिहास विभाग में स्नातकोतर के विद्यार्थियों सहित आदि गणमान्य विद्वान मौजूद रहे।

शोध संस्थान नेरी द्वारा दिल्ली कालका जी मन्दिर में गोष्ठी

रविवार कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (३० जून २०१९) को प्रातः ११.०० बजे कालका जी मन्दिर दिल्ली में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी द्वारा आयोजित गोष्ठी का आयोजन हुआ। जिसमें कालका जी मन्दिर के महन्त सुरेन्द्र नाथ ने बैठक की अध्यक्षता की। शोध संस्थान के आर्थिक पक्ष के अध्यक्ष श्री सुरेन्द्र नाथ शर्मा ने आए हुए विद्वानों का परिचय करवाया। निदेशक श्री चेतराम गर्ग ने शोध संस्थान का उद्देश्य तथा संस्थान द्वारा चलाए जा रहे कार्यों की रुपरेखा विद्वानों के समक्ष रखी। उन्होंने बताया कि शोध संस्थान का उद्देश्य भारतीय इतिहास का तथ्य के आधार पर इतिहास लेखन करना है। ठाकुर रामसिंह जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक थे। उनका उद्देश्य था कि भारत की युवा पीढ़ी को विदेशियों द्वारा लिखे गए मिथ्या इतिहास से छुटकारा मिल सके और भारत का वास्तविक इतिहास का ज्ञान हो सके। यह शोध संस्थान विभिन्न

विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों में इतिहास के सत्य साक्ष्य के आधार पर शोध पत्र वाचन तथा संगोष्ठियों का आयोजन करता है। संस्थान में श्रीमद्भागवत पुराण विषय पर क्रमशः प्रतिमास प्रथम रविवार को गोष्ठी का आयोजन किया जाता है जिसमें विद्वान प्रतिपादित विषय को गंभीरता से समझने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने बताया कि शोध संस्थान के संचालन के लिए निदेशक मण्डल, वैचारिक पक्ष, संस्थान के कार्य विभाग प्रमुख तथा संगठन ईकाई मिलकर कार्य करती है। वर्ष में राष्ट्रीय स्तर का परिसंवाद तथा क्षेत्रीय व प्रान्तीय स्तर की गोष्ठियों का आयोजन होता रहता है। दिल्ली में भी इतिहास विषय पर तीन मास में एक बार गोष्ठी करने का निर्णय लिया गया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में महन्त सुरेन्द्र नाथ जी ने कहा कि मेरा इस कार्य के लिए तन-मन-धन से सहयोग है। आप जब चाहें यहां इस प्रकार की गोष्ठी का आयोजन कर सकते हैं। यह कार्य सभी को प्रेरणा देने वाला है। उन्होंने बताया कि गुलामी के कारण लोग अपने वास्तविक इतिहास को भूल गए हैं। शोध संस्थान नेरी द्वारा किया जा रहा कार्य राष्ट्र की उन्नति के लिए उपादेयी है। इस अवसर पर डॉ. अजय शर्मा, जगदीश शर्मा, डॉ. अरुण, मनोज कुमार तथा कुलभूषण आदि विद्वानों ने भाग लिया।

गांव व डाकघर नेरी,
तह. व जिला हमीरपुर (हि.प्र.)